प्रकाशक—
कृष्णदास गांधी,
मंत्री, अखिल भारत चरखा संघ
सेवाग्राम, (वर्धा)

पहली बार—१०००
मूल्य आठ आना

मुद्रक—
नारायणदास जाजू, मुख्य प्रबंधक
श्रीकृष्ण प्रिंटिंग वर्क्स, वर्धा

आजादी का खतरा

धीरेन्द्र मजूमदार

अखिल भारत चरखा संघ, सेवाग्राम

प्रकाशक की ओर से
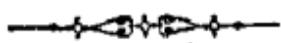
चरखा संघ के अध्यक्ष के नाते पिछले दिनों श्री. धीरेन्द्रभाई ने कुछ प्रांतों का दौरा किया। उनके चंद व्याख्यानों के संकलन की किताब "जमाने की मांग" चरखा संघ की ओर से १९४८ में प्रकाशित हो चुकी है। उसमें लिखेपढे नौजवान, कॉंग्रेस कार्यकर्ता, शिक्षकगण और खादी-सेवकों के लिये अलग अलग व्याख्यान दिये गये हैं। मगर किताब छपने के बाद भी अपने दौरे में खादी की दृष्टि समझाने का सिलसिला श्री. धीरेन्द्रभाई को जारी रखना पडा। अपने विचारों को और भी स्पष्ट करने की वे कोशिश करते रहे। इसके लगातार चिंतन और सामने आये सवालों के बारे में जो नया पत्रक उन्होंने लिखा है वह मूल निबंध और प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

खतरे की घंटी
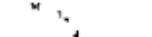
आजकल अक्सर पूछा जाता है कि "आजादी मिली, अब खादी की जरूरत क्या?" यह सवाल इसलिये उठता है कि केवल फौजी आजादी को हम "पूर्ण आजादी" मानने लग गये हैं। वैसी आजादी को भी जिसकी गुलामी करनी पडती है ऐसी आर्थिक सत्ता का केंद्र आज कहाँ है? हमारे आर्थिक व्यवहार किनके इशारे पर चलते हैं? उन पर काबू पाने के तरीके क्या हो सकते हैं? होड की पागल दौड या स्वावलंबी सामाजिक रचना? ऐसी रचना जिसमें एक की आजादी दूसरे के लिये गुलामी न हो; ऐसी रचना जिसमें एक तरह की आजादी दूसरी गुलामी का रूप न हो; ऐसी आजादी जिसमें सामाजिक सहयोग की पराकाष्ठा के साथ साथ हर मनुष्य अधिक से अधिक स्वतंत्र हो। इनकी चर्चा श्री. धीरेन्द्रभाई ने इस किताब में की है। मिली हुई आंशिक आजादी से हम भुलावे में न पडें इसलिये उन्होंने खतरे की घंटी बजाई है।

इस किताब में हर तरह के विचारक, जिज्ञासु तथा सेवकों के लिये ठोस खुराक भरा पडा है। प्रगतिमान दुनिया में पिछडा चरखा क्यों? आजादी मिलाने, पूर्ण करने व टिकाने के लिये चरखा क्यों? इन जड के सवालों से लेकर उनके हल के रूप में चरखे का स्थान बतलाते हुए खादीकाम की सही दिशा की ओर उन्होंने हमारा ध्यान खींचा है। किताब में जो चिंतन प्रकट किया है उसको मूर्त रूप देने के लिये कैसे सेवक चाहिये यह भी प्रश्नोत्तरी के अंत में बतलाया है।

सेवाग्राम,
रामनवमी, शके १८७२
ता. २७:३:५०

—कृष्णदास गांधी

विषय सूची

आजादी का खतरा

असर की राजनीति

भाईयो,

दो साल हो गये अंगरेज इस देश से गये, लेकिन लोगों को ऐसा नहीं लगता है कि हम आजाद हो गये। शहर या गांव कहीं चले जाइये जनता के मुंह से यही सुनने में आता है, "इससे तो अंगरेजी राज अच्छा था।" आप आजादी के लिये लडनेवाले कांग्रेसजन हैं इसलिये आज की परिस्थिति पर आपको गंभीर विचार करना है।

आज भारत के किसी भी वर्ग, श्रेणी या गिरह में चले जाइये, आपको एक ही चित्र नजर में आवेगा, वह यह है कि हरएक व्यक्ति किसी दूसरे को दोषी ठहराता है। जब किसी वर्ग या समाज में एक दूसरे पर दोषारोपण की स्थिति पैदा होती है तब समझना चाहिये कि वह हारा हुआ समाज है। जैसे किसी 'मैच' खेलकर लौटी हुई 'टीम को' आप एक दूसरे पर दोषारोपण करते सुनेंगे तो आप फौरन समझ जावेंगे कि यह टीम हारी हुई है।

अब प्रश्न यह है कि पिछले ३० साल से आजादी की लडाई लड कर अंगरेजों को भगा देने के बाद भी हम हारे हुए क्यों दीखते हैं। जिसके मूल कारण पर विचार करें।

अंगरेजों से भारत छुडवाने की लडाई हमने गांधीजी के नेतृत्व में की थी। गांधीजी मुल्क की सारी जिन्दगी को आजाद करना चाहते थे। किसी मुल्क की तीन जिन्दगियां होती हैं :—

१. राजनैतिक २. आर्थिक तथा ३. सामाजिक

गांधीजी ने जब भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया तब देश की राजनैतिक जिन्दगी अंगरेजों के हाथ में थी। आर्थिक जिन्दगी पूंजी-

पतियों के तथा सामाजिक जिन्दगी प्रतिक्रियावादियों के हाथ में थी। गांधीजी ने अंगरेजों के हाथ से राजनैतिक जिन्दगी को छुडाने के लिये सत्याग्रह का पाठ पढाया, आर्थिक जिन्दगी को पूंजीपतियों के कब्जे से मुक्त करने के लिये खादी तथा ग्रामोद्योग का रास्ता बताया और सामाजिक जिन्दगी को प्रतिक्रियावाद से मुक्त करने के लिये हरिजन सेवा तथा ग्राम-सेवा का कार्यक्रम बताया।

किसी कालेज के छात्र को अगर तीन विषय पढना है और अगर वह एक विषय पढ कर दो विषय नहीं पढता है तो वह एक में पास होकर बाकी दो में फेल हो जाता है। इससे वह टोटल में फेल होकर दूसरे क्लास में प्रमोशन नहीं पाता है। उसी तरह कांग्रेस और मुल्क ने गांधीजी के तीन पाठों में से सत्याग्रह का एक पाठ उत्साह के साथ पढा। लेकिन खादी तथा हरिजन कार्य में उसको दिलचस्पी नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि वह एक विषय में यानी राजनैतिक जिन्दगी को अंगरेजों के हाथ से छुडाने में पास हो गया और दो विषय में पास नहीं हो सका। अर्थात् आज भी आर्थिक जिन्दगी पूंजीवाद के हाथ में तथा सामाजिक जिन्दगी प्रतिक्रियावाद के कब्जे में बंधी पडी हुई है। एक विषय में पास होकर बाकी दो विषय में फेल हो जाने के कारण वह टोटल में फेल हो गया और उसको प्रमोशन नहीं मिला, यानी उसकी प्रगति नहीं हो रही है।

आपको इस स्पष्ट स्थिति को समझना है और मुल्क की प्रगति के लिये रास्ता निकालना है। नहीं तो जैसे फेल छात्र क्रमश गिरता ही जाता है उसी तरह आप गिरते ही चले जावेंगे।

गांधीजी ने अपने मरने से थोडे ही दिन पहले यह कहा था कि आपने राजनैतिक क्रान्ति कर राजनैतिक आजादी हासिल की, लेकिन आपको अभी आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति कर इन दिशाओं में आजादी

हासिल करनी है, नहीं तो मिली हुई आजादी भी आप खो बैठेंगे। आपको गांधीजी की इस अंतिम वाणी का गहराई से विचार करना है। आपको समझना होगा कि आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति से गांधीजी का क्या मतलब है और उस क्रान्ति की अवहेलना से किस तरह आपको मिली हुई आजादी भी हाथ से निकल जावेगी। इस प्रश्न पर विचार करने से पहले आज की दुनिया का राजनैतिक स्वरूप कैसा है उसको समझना जरूरी है। दो सौ वर्ष पहले दुनिया की संपत्ति मुल्कों की आबादी में फैली हुई थी। उस समय लोग हाथ के श्रम से आवश्यक सामग्री का उत्पादन करते थे। अतः उन दिनों में अगर एक मुल्क दूसरे मुल्क को शोषण करना चाहता था तो उसे मुल्क की आबादी पर कब्जा करना जरूरी था। सारी आबादी पर प्रत्यक्ष कब्जा गद्दी पर कब्जा करके ही संभव हो सकता है। अतः उन दिनों की राजनीति अधिक से अधिक मुल्कों पर दखल करने की थी। अगर फ्रान्स और इंग्लैंड में प्रतिद्वन्द्विता थी तो वह इस बात की थी कि कौन कितने मुल्कों पर अपना दखल जमा सके। लेकिन आज की दुनिया का आर्थिक ढांचा बदल गया है। आज प्रत्येक मुल्क की संपत्ति बाजारों में केन्द्रित हो गयी है। और बाजार पूंजी पर केन्द्रित है। अतः किसी मुल्क के शोषण करने के लिये उस मुल्क की गद्दी पर "दखल" जमाना आवश्यक नहीं रह गया, बल्कि पूंजी पर कब्जा कर बाजारों पर "असर" जमाने की जरूरत है। दखल की राजनीति अब पुरानी और बेकार हो गयी है। आज की नवीन राजनीति है असर की राजनीति। यही कारण है कि आज अगर रूस और अमेरिका में प्रतिद्वन्द्विता है तो वह इस बात की है कि कौन कितने मुल्कों पर असर जमा सके।

अतः अगर भारत की आजादी की बात सोचनी है तो आपको आज की असरवाली राजनीति की पृष्ठभूमि पर विचार करना होगा। अर्थात् अगर आज की आपकी राष्ट्रीय नीति तथा राष्ट्रीय प्रोग्राम ऐसा हो कि अमेरिका या रूस आप पर असर कर ले तो आज की आजादी की लड़ाई

में आप हार गये। और अगर आप अपना सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम ऐसा बनावें कि अिन दोनों शक्तियों के असर के बाहर रहें तो आज की राजनैतिक लडाई में आप जीत गये और आपने अपनी स्वतत्रता सगठित कर ली।

अब प्रश्न यह है कि अमेरिका और रूस किस रास्ते से अपना असर लेकर हमारे मुल्क पर हमला कर सकते है। अिसके लिये मुख्यत दो मोर्चों पर हमारा ध्यान होना चाहिये —

१, आर्थिक मोर्चा, और २ सामाजिक

आर्थिक मोर्चा

वर्तमान आर्थिक समस्याओं में "सिविल सप्लाईज" की समस्या सब से जटिल है। इस समस्या को हल कर सकने या न कर सकने में हमारी हार-जीत निहित है। वस्तुत अिस समस्या के आधार पर आज की सरकारें बनती हैं और बिगडती हैं। यही कारण है कि हमें दिल्ली और दूसरी राजधानी की सडकों पर "रोटी-कपडा दो, नहीं तो गद्दी छोड दो" का नारा लगाते हुए जनता के जुलूस नजर आते हैं।

इस समस्या का हल दो ही तरीकों से हो सकता है, आप कल कारखाना खोलकर केन्द्रीय वाद का तरीका अपनाइये या हल, बैल और चरखा करघा चला कर विकेन्द्रीकरण तथा जन-स्वावलबन का रास्ता लीजिये। अगर आप कल कारखाने का रास्ता लेगे तो आपको पूजी चाहिये सोने के रूप में, और अगर आप चरखा-करघा चलायेंगे तो आपको पूजी चाहिये जनता के श्रम और समय के रूप में। अगर सोने के भरोसे मुल्क की सिविल सप्लाईज की समस्या हल करने की कोशिश करेंगे तो आपको जाना पडेगा उसी मुल्क के पास जिसके पास सोने का स्टॉक मौजूद है। और आपको बताने की शायद ही आवश्यकता पडे कि ससार का सोना अमेरिका के पास है। वे सोना आपका मुह देखकर नहीं देंगे। वे इसी बहाने भारत के रगमंच पर किसी न किसी रूप में अपना असर लेकर प्रवेश करके ही देंगे।

यही कारण है कि गांधीजी मरते समय भी आपको आर्थिक क्रान्ति की बात कह गये। उनकी आर्थिक क्रान्ति यह है कि आज जो जिन्दगी की आवश्यकताओं की पूर्ति पूंजी के भरोसे चलाने की परिपाटी चल रही है उसे तोडकर जनता के श्रम के भरोसे आवश्यकताओं की पूर्ति करने की परिपाटी कायम करें। अर्थात् पूंजीवाद का नाश कर श्रमवाद की स्थापना करें। तभी आप इस असरवाली राजनीति में अमेरिका के हाथ से मुक्ति पा सकते हैं।

गांधीजी की बताई आर्थिक क्रान्ति करने में अगर हम असफल रहेंगे तो भारत में केवल अमेरिका ही प्रवेश नहीं करेगा बल्कि राष्ट्रीय भूमिका में अेक जबरदस्त सर्वाधिकारी अधिनायक तंत्र कायम हो जायगा। स्पष्ट है कि आज की परिस्थिति में अगर कल-कारखानों का रास्ता लिया जाय तो हम को उन्हीं पूंजीपतियों के दरवाजे पर जाना पडेगा जिनके नाश का नारा हम पिछले तीस साल से लगाते रहें। क्यों कि देश के औद्योगीकरण के लिये जो कुछ साधन तथा कौशल मुल्क में है वह सब उन्हीं के पास है। फिर जब पूंजीपतियों के हाथ में हम औद्योगीकरण का काम देंगे तब वे पुराने मित्र विदेशी पूंजीपतियों के साथ गठबन्धन करेंगे। क्यों कि आखिर उनके पास संचित पूंजी है ही कितनी? डेढ सौ वर्ष के अंगरेजी राज्य में पूंजीवादी शोषण का मुख्य हिस्सा तो विदेशी ले गये। देशी पूंजीपतियों के पल्ले तो दलाली का बचा हिस्सा ही पडा। इसलिये सारे मुल्क के औद्योगीकरण के लिये उन्हें भी विदेशी पूंजीपतियों के पास जाना होगा। उत्पादन के लिये जब देशी-विदेशी पूंजीपतियों का गठबंधन होगा तो वितरण के बहाने वे अपने पुराने मध्यम वर्ग के दलालों को अपने गुट में शामिल कर लेंगे।

इस प्रकार मुल्क की आर्थिक जिन्दगी त्रिगुट के कब्जे में कडाई के साथ फंस जाने पर उनके लिये राजनैतिक जिन्दगी को हाथ में करना मुश्किल नहीं होगा। आखिर राजनैतिक जिन्दगी का कब्जा बेहोश जनता

के वोट से ही मिलता है न ! गांधीजी गत तीस साल से हमें रचनात्मक कार्य द्वारा जनता में प्रेरणा-शक्ति तथा होस पैदा करने को कहते आये हैं। हमने ऐसा नहीं किया। हमने उनमें ठोस कार्य की जिम्मेवारी से होश पैदा करने के बजाय विभिन्न नारों से जोश पैदा किया और उनको सिखा दिया कि हमारे कहने के अलावा और किसी को वोट न दो। उस शिक्षण के आधार पर जब जनता यह कहकर उपरोक्त त्रिकुट को वोट देने से इनकार करेगी कि "हम आपको वोट नहीं दे सकते हैं, हम तो वोट देंगे अमुक टोपीधारी देशभक्तों के कहने से," तब आर्थिक जिन्दगी पर कब्जा किया हुआ गुट्ट कुछ टोपीधारी देशभक्तों को खरीद कर अपने आगे उसी तरह से कर लेगा जिस तरह से देहाती नाटक में लोग मिट्टी के शेर-भालू का चेहरा खरीद कर बांध लेते हैं। इस तरह जब यह चारों अंगों का अेक चतुष्कोण गुट्ट देश की राजनैतिक जिन्दगी का कब्जा कर लेगा तब वह भयंकर फासिस्टवादी अधिनायक के रूप में जनता की छाती पर बैठ जावेगा।

राष्ट्रीकरण असंभव

आप में से कुछ मित्रों की दृष्टि विदेशी समाजवादी है। आप कहेंगे कि हम पूंजीपतियों के हाथ में क्यों जावेंगे। हम सीधे उद्योगों का राष्ट्रीकरण कर लेंगे। दोस्तो, आप सब कार्यकर्ता हैं। आप को नारों के पीछे नहीं दौडना है। आपको परिस्थिति का गंभीर विश्लेषण कर ही कुछ करना होगा। आज की स्थिति में राष्ट्रीकरण करना करीब असंभव ही है। सामान्य शासन व्यवस्था के कार्य में भी अभी आप भ्रष्टाचार नहीं हटा पाये हैं। जरासे तेल-नौन के बंटवारे में भी यह बात घुस रही है। तो इसी 'मटीरियल को' लेकर आप राष्ट्रीकरण कहां तक करेंगे। फिर हर हालत में विदेशी पूंजी तो चाहिये ही और वह विदेशी पूंजी भी पूंजीवादी मुल्क में है। अतः ये भी अपने भाईचारे का संरक्षण देख कर ही मदद करेंगे। इसके अलावा आपके सामने दूसरे पचासों झंझटों के मोर्चे बने पडे हैं। इसलिये एक बार और अेक मोर्चा खोलना कठिण है। यह मोर्चा भी

जैसा तैसा नहीं है। जमींदार की जमींदारी लेना आसान है। वे हमेशा के काहिल और अयोग्य श्रेणी के हैं, और उनकी जमीन उनके कब्जे में न होकर पहले से ही किसानों के कब्जे में है। लेकिन पूंजीपतियों का प्रश्न ऐसा नहीं है। अव्वल वे संसार में सब से चुस्त, योग्य और चतुर श्रेणी के लोग हैं। फिर उनकी पूंजी उन्हीं के कब्जे में है। और उस पूंजी का गोदाम भी ऐसे भूलभुलैया के रूप में है कि किसी को पता नहीं लगता। जिस दिन उनकी पूंजी की जब्ती का कानून बनेगा उसी दिन वह ऐसे 'भूमिगत' हो जायगी कि खोद के निकालना भी मुश्किल होगा। सामान्य चीनी के नियन्त्रण की चेष्टा से इस मोर्चे की दुर्गमता की बानगी लोगों ने देख ली है। आप संपूर्ण जब्ती की बात करते हैं और एक चीनी की जब्ती नहीं, महज नियन्त्रण पर ही इन्होंने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि सारी जनता पूंजीपतियों को छोड़कर सरकार पर ही कुल्हाडी लेकर दौड पडी है। जिस बदमाशी के कारण यह तकलीफ हो रही है इसके लिये जिम्मेदार कौन है यह तय करना जनता के लिये असंभव हो रहा है। अतः सरकार चाहे जवाहरलाल की हो चाहे जयप्रकाश की, उन्हें अनिवार्य रूप से भी परिस्थिति से समझौता करना पडेगा। सरकार चाहे पूंजीपतियों की विरोधी हो, फिर भी परिस्थिति की मजबूरी के कारण उन्हें आज उसी तरह पूंजीपतियों से समझौता करना होगा जिस तरह विरोधी होते हुये भी परिस्थिति ने समय समय पर हिटलर को स्टेलिन के साथ, स्टेलिन को तोजो के, और चर्चिल को स्टेलिन के साथ समझौता करने के लिये मजबूर किया था।

तर्क के खातिर अगर यह मान लिया जाय कि कोई ऐसा अलौकिक शक्तिशाली दल निकल आवे, जो इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी सफलता के साथ राष्ट्रीकरण कर डालेगा। फिर भी क्या होगा? सोना तो अमेरिका से लाना ही है। और उत्पादन केन्द्रित होने के कारण जनता की मौलिक जिन्दगी केन्द्रीय व्यवस्था की मुट्ठी में रहेगी ही। चाहे वह मुट्ठी किसी वर्ग की हो, चाहे किसी मजबूत दल की। अगर पूंजीपतियों के हाथ में उत्पादन

के साधन होंगे तो देश में होगी बनियाशाही; और अगर सरकार के हाथ में चले गये तो मुल्क पर होगी, नौकरशाही। दोनों से ही अधिनायकवाद की सृष्टि होगी। सिर्फ एक पर लेबल रहेगी फासिस्टवाद की और दूसरे पर रहेगी समष्टिवाद की। सभी चाय चाय ही है, चाहे वह लिपटन के नाम से बिकती हो, चाहे ब्रुकबांड के नाम से। उसी तरह सर्वाधिकारी अधिनायक तंत्र सब एक ही वस्तु है। फर्क केवल नारों का है। पूंजीवादी अधिनायक तंत्र में जहां जनता शोषित होगी वहां समष्टिवादी अधिनायक तंत्र में निर्दलित होगी।

अतएव विकेन्द्रित अर्थनीति द्वारा पूंजीवाद का नाश कर श्रमवाद को स्थापित करने की गांधीजी द्वारा बताई अहिंसात्मक आर्थिक क्रान्ति में अगर आप फौरन न लग जावेंगे, तो देश में आजादी के नाम से जो चीज देख रहे हैं यह विदेशी राज्य की जगह महज स्वदेशी राज्य ही रह जायेगी, स्वराज्य नहीं होगा। वह चाहे जिस किस्म के अधिनायक का राज्य हो वह जनता का राज्य नहीं होगा। यह हराम राज्य भले ही हो, रामराज्य नहीं होगा। यही कारण है कि गांधीजी मरते दम तक कहते रहे हैं कि अगर भारत में घर घर चरखा नहीं चलेगा तो अंगरेज भले ही देश छोड़ कर चले जायं लेकिन मुल्क को स्वराज्य नहीं मिलेगा।

सामाजिक मोर्चा

दूसरा मोर्चा सामाजिक है। यह मोर्चा है वर्ग और वर्ण विषमता का। जिस तरह अगर हम आर्थिक मोर्चे पर गांधीजी की बताई क्रान्ति में सफल नहीं हो सकेंगे तो अमेरिका अपना प्रभाव लेकर हमारे मुल्क में घुस जावेगा, उसी तरह अगर इस सामाजिक मोर्चे का हम ठीक तरह से मुकाबला नहीं कर सकेंगे तो रूस का असर हमारे देश पर कब्जा कर लेगा।

गांधीजी स्वराज्य आन्दोलन के प्रथम से ही छूत-अछूत का भेद मिटाने के लिये आग्रह करते रहे हैं। लेकिन मुल्क नारों के जोश के नशे

में इस काम में कोई क्रान्ति नहीं ढूंढ सकी और हम इस दिशा में उदासीन ही रहे। नतीजा यह हुआ कि जिस तरह से गांधीजी के कहे मुताबिक लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता में असमर्थ होने के कारण अंग्रेजों ने हिन्दूस्थान को हिन्दू और मुस्लिम के बीच की खाई पर पटक कर दो टुकडे कर दिया उसी तरह गांधीजी के कहने के अनुसार हरिजन-समस्या का हल करने में असमर्थता के कारण आज रूस छूत और अछूत की खाई पर भारत को पटक कर चकनाचूर करना चाहता है। अगर आपको मुल्क को चूर चूर होने से बचाना है तो फौरन छूत-अछूत का भेद मिटाना होगा। यह सवाल मुल्क की जिन्दगी और मौत का है। अगर आप जिन्दा रहना चाहते हैं तो इस दिशा में क्रान्तिकारी कदम उठाना होगा; खान-पान, विवाह-शादी तक सब प्रकार के भेदभाव के चिन्ह मिटा कर ही शान्ति लेना होगा।

सामाजिक मोर्चे का एक दूसरा हिस्सा भी भयानक रूप ले रहा है। अंगरेज इस देश में आये थे शासन और शोषण करने के लिये। स्वभावतः अिस काम के लिये उन्हें देशभर में एजन्टों की आवश्यकता थी। अतः उनके सामने समस्या इस बात की थी कि उन्हें ऐसे लोग मिल जायं जिनकी योग्यता इसके लिये विशेष रूप से हों। साथ ही वे दूसरे काम की योग्यता के लिये पंगू हो जायं, ताकि उन्हींको एजन्ट बनने का एक मात्र काम होने के कारण वे सस्ते में मिल सकें। अतः उन्होंने भारत के कृषि, गो-पालन आदि उत्पादन के कार्य के साथ साथ भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति को तोडकर, छै घंटे स्कूल में तथा तीन घंटे घर पर पढाई की एक नवीन पद्धति का आविष्कार किया, जिससे लोगों में प्रेरणा-शक्ति तथा उत्पादन-क्षमता लोप होकर वे सिर्फ लिखने-पढने लायक बाबू बन कर और शासन तथा शोषण के लिये अंग्रेजों के बने-बनाये यंत्र का पूर्जा बन जायं। शासक और शोषक के सहवास के कारण उनकी पद की प्रतिष्ठा और धन की सहूलियत का कुछ हिस्सा उन्हें कमीशन में मिलने लगा। अिस प्रलोभन से आकृष्ट होकर क्रमशः तेजी से देहात के किसान याने उत्पादक वर्ग के लोग भी वर्तमान शिक्षा पाकर इस वर्ग में शामिल

होने लगे। इस प्रकार उत्पादक की कमी और शोषक की वृद्धि की प्रक्रिया लगातार चालू रहने के कारण आज के समाज में एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो गयी है कि बचे हुए उत्पादक शोषक के बोझ से दबकर मर रहे हैं और उनमें काफी रस न रह जाने के कारण इतना विशाल वर्ग भी सूख कर मर रहा है।

अगर ऐसी स्थिति और थोडे ही दिन चले तो दोनों का—उत्पादक और शोषक का—संपूर्ण नाश अवश्यभावी है। ऐसा होने से सृष्टि का ही नाश हो जावेगा। लेकिन सृष्टितत्त्व का मूलधर्म है आत्मरक्षा। अतः प्रकृति इस परिस्थिति का किसी न किसी तरह निराकरण करेगी ही। कोई भी मनुष्य-शक्ति इसे रोक नहीं सकती। अतः आज की युग-समस्या निश्चित रूप से यह मांग पेश कर रही है कि यह वर्ग-विषमता खत्म होकर अेक वर्ग हो। अगर एक वर्ग ही होना है तो निःसंदेह वह उत्पादकों का वर्ग ही हो सकता है। क्योंकि वही एक वर्ग अपने पैर पर खडा रह सकता है। मतलब यह कि प्रकृति कोई न कोई उपाय पकडेगी, जिससे शोषक वर्ग का विघटन हो सके।

जिस तरह आर्थिक समस्याओं का हल दो ही तरीकों से हो सकता है—पूंजी के आधार पर केन्द्रवादी तरीके से, या श्रम के आधार पर स्वावलंबी तरीके से, उसी तरह वर्ग-विषमता की समस्या भी दो ही तरीकों से हल हो सकती है—

१. उत्पादकों द्वारा हिंसक तरीकों से शोषकों का नाश करके,

या २. शोषक को उत्पादन कार्य में लगा कर उन्हें उत्पादक वर्ग में विलीन करके।

शोषकों का नाश करने का कम्युनिस्ट तरीका अगर मुल्क ने अपनाया तो हिंसा से प्रतिहिंसा पैदा होगी और इस हिंसा-प्रतिहिंसा के घात-प्रतिघात से देश छिन्न-भिन्न होकर जर्जर हो जावेगा। जर्जर होकर भी उद्देश्यसिद्धि में सफल नहीं होगा। क्योंकि ध्वंस का उद्देश्य कभी सफल नहीं हुआ। यह प्रकृति तथा विज्ञान के नियम के विरुद्ध है। विज्ञान का

नियम यह है कि किसी चीज का नाश नहीं होता, उसका केवल रूप-परिवर्तन मात्र होता है। यही कारण है कि भारत के प्राचीन ऋषियों ने, जो प्रकृति की गोद में रमते रहते थे और विज्ञान के नियम से चलते थे, मृत्यु का अस्तित्व ही नहीं माना है। या तो मनुष्य का रूपान्तर होकर पुनर्जन्म होता है या वह पंचभूत में विलीन होकर स्थिर रहता है। तो इस विशाल शोषक वर्ग का ध्वंस किस प्रकार हो सकता है? तत्काल देखने में नाश होने जैसा जरूर लगेगा, लेकिन प्रकृति के नियमानुसार रूपान्तर होकर उसका पुनर्जन्म होना अवश्यंभावी है। और चूंकि उसका पुनर्जन्म हिंसा की प्रतिक्रिया रूप में होगा, अिसलिये उसका जन्म होगा प्रतिहिंसक के रूप में। यही कारण है कि रूस की जिस जनता ने पूंजीपति वर्ग का हिंसात्मक नाश करके शांति मिली ऐसा समझा, वही वर्ग रूपान्तरित होकर अधिनायक दल के रूप में प्रतिहिंसक बन कर जनता की छाती पर बैठ गया। जहाँ पूर्वरूप में पूंजीपति जनता की कुछ संपत्ति का शोषण कर उसे छोड देता था, वहां यह अधिनायक दल प्रतिहिंसा को चरितार्थ करने के लिये उनके सर्वस्व पर कब्जा कर उन्हें स्थायी रूप से निर्दलन करने के लिये एक साधन बन गया। इससे आप समझ सकते हैं कि देश की वर्ग-विषमता को दूर करने के लिये अगर मुल्क ने रूस के इशारे से हिंसात्मक तरीके को अपनाया तो वह छिन्न-भिन्न तो होगा ही, पर उसका मतलब भी सिद्ध नहीं होगा।

गांधीजी का वर्गपरिवर्तन का तरीका

गांधीजी का अहिंसात्मक तरीका वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्ग-परिवर्तन का है। वे शोषक वर्ग को ध्वंस न कर उससे उत्पादक बनने की अपील करते रहे हैं, और इस सामाजिक क्रान्ति का एक निश्चित कार्यक्रम देश के सामने पेश करते रहे हैं। सन ४४ के आखिर जेल से लौटते ही गांधीजी ने जमाने की इस भीषण समस्या को देख लिया था कि अगर फौरन वर्गविषमता को दूर करने के लिये क्रान्तिकारी कदम न उठाया

जाय तो मानवता निराशा की शिकार बन जायेगी और वह हिंसात्मक तरीके से अपना नाश कर डालेगी। बाहर आते ही उन्होंने अखिल भारत चरखा संघ द्वारा एक नवीन क्रान्तिकारी कदम उठाना चाहा। उन्होंने चरखा संघ के सामने एक प्रस्ताव रखा कि उसकी सारी प्रवृत्ति शोषणहीन समाजरचना की दिशा में होनी चाहिये। वर्ग-परिवर्तन के आन्दोलन के नेतृत्व के लिये उन्होंने देश के शिक्षित नौजवानों से अपील की। ७ लाख नौजवानों को अपने को किसान और मजदूर बना कर ७ लाख गांवों में बैठ जाने को कहा। इस तरह उनमें विलीन होकर ही वे उनका नेतृत्व करें तथा उन्हें स्वयंपूर्ण बना कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आन्तरिक व्यवस्था के लिये शोषक वर्ग के भरोसे से मुक्त होकर उनमें शोषित होने से इनकार करने की योग्यता पैदा करें। दूसरी ओर वे शोषक वर्ग का आज की परिस्थिति की ओर ध्यान दिलावें। उन्हें जमाने की दीवाल पर लिखी बातों को बतावें। उन्हें स्पष्ट रूप से कह दें कि अगर वे अपना वर्ग-परिवर्तन कर मजदूर नहीं बनते हैं तो वे अनिवार्य रूप से वर्ग-संघर्ष के संकट को आमंत्रित करते हैं। वर्ग-संघर्ष की विभीषिका क्या है यह तो लोगों ने पंजाब में देख ही ली है। जब एक समूह दूसरे समूह से संघर्ष में लग जाता है तो मनुष्य शैतान हो जाता है। बहुसंख्यक द्वारा अल्पसंख्यकों को लूटना, घर जलाना, स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार करना मामूली बात हो जाती है। अतः अगर ये निष्क्रिय बन कर हुजूर और मजूर के संघर्ष को फैलने देंगे तो बहुसंख्यक मजूर द्वारा उनकी हालत वही होगी जो पूर्वी और पश्चिमी पंजाब में बहुसंख्यों द्वारा अल्पसंख्यकों की हुई। शोषक वर्ग के लोग मजदूर बनने की तकलीफ से घबड़ाते हैं। वे अपने कपड़े की सफेदी को बचाना चाहते हैं। खेतों में मजदूरी करने से, अपने शरीर में कीचड़ लगने से भागते हैं। क्यों कि वे नहीं समझते हैं कि वर्ग-परिवर्तन की तकलीफ से वर्गसंघर्ष कहीं अधिक तकलीफ-देह है। उनको होश नहीं है कि आज वे जहां कपड़े की सफेदी को बचाना

चाहते हैं, वहां उनका प्राण बचना तक मुश्किल हो जायगा। जो आज कीचड़ से भागते हैं उन्हें खून से बचना मुश्किल होगा।

गांधीजी एक ओर नौजवानों को गांव भेजकर समग्र ग्रामसेवा के कार्यक्रम द्वारा इस नवीन अहिंसात्मक क्रान्ति की दिशा में एक निश्चित कदम रखना चाहते थे और दूसरी ओर सारे देश में वर्ग-परिवर्तन की दिशा में हल्के हल्के कार्यक्रमों से इस आन्दोलन के लिये देशभर में एक मनो-वैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि करना चाहते थे। इस दिशा में पहला कदम चरखा संघ में सूतशर्त के नियम का था। उन्होंने खादी पहननेवालों के लिये कम से कम दो पैसे का सूत कात कर देना अनिवार्य कर दिया जिससे थोड़े परिमाण में ही सही, शरीरश्रम द्वारा प्रत्यक्ष उत्पादन कर वे उत्पादक-वर्ग के साथ एकात्मता स्थापित करें, और अपनी दृष्टि वर्ग-परिवर्तन की आवश्यकता की ओर केन्द्रित करें। बाद को उन्होंने यह भी कहा कि जो लोग कम से कम थोड़ा खाद्य पदार्थ उत्पादन नहीं करते हैं उनको खाना खाने का अधिकार नहीं है।

समय की मांग को देखें

क्रान्तिकारी तरीके का मुकाबला क्रान्तिकारी तरीके से ही हो सकता है, यह बात आप को समझ लेनी चाहिये। आज की परिस्थिति जो भी क्रान्तिकारी तरीका बतायेगी, चाहे वह मुल्क को नाश की ओर ही क्यों न ले जावे, जनता उसी ओर झुकेगी। जमाने की मांग है वर्गहीन समाज की स्थापना। उसके लिये रूस के इशारे से कम्युनिस्ट एक दिशा बता रहे हैं। वे उत्पादकों को उभाड़ कर शोषकों का गला कटवाना चाहते हैं। आपने भी अपने जयपुर के अधिवेशन में वर्गहीन समाज स्थापना का प्रस्ताव किया है। लेकिन आपका तरीका क्या है? आज आप के चोटी के नेता से लेकर छोटे नेता तक कम्युनिस्टों से मुकाबला करने की बात करते हैं। जनता आप से पूछेगी कि आप तो कहते हैं कि आप भी श्रेणीहीन समाज करना चाहते हैं। अगर हम कम्युनिस्टों को घुसने न दें तो आप ही बताइये कि आप किस तरीके से ऐसा करना चाहते हैं?

आपको इस सवाल का जवाब देना है। आप वैधानिक तरीका बताते हैं। आप जमींदारी उन्मूलन का कानून बनाते हैं और दूसरे वैधानिक प्रस्ताव लाते हैं। इस तरीके से क्रान्तिकारी समस्याओं का हल नहीं होता।

३० साल पहले राजनैतिक क्षेत्र में इसी तरह एक क्रान्तिकारी परिस्थिति के क्रान्तिकारी समाधान की मांग थी। उस समय भारत से अंगरेजी राज्य की समाप्ति की मांग थी। आतंकवादी, इटली आयरलैंड आदि विदेशों से प्रेरित होकर एक आतंक का क्रान्तिकारी तरीका पेश करने में तत्पर हुए। नरम दल वाले भी अंगरेजी राज्य खतम करना चाहते थे। लेकिन वे इसे करना चाहते थे विधान सभा की चहारदीवारी के अन्दर से। जनता उनके इस वैधानिक तरीके की ओर न देख कर आतंकवादियों के क्रान्तिकारी तरीके की ओर ही झुक रही थी। उसी समय गांधीजी ने असहयोग और सत्याग्रह का दूसरा और बेहतरीन क्रान्तिकारी प्रोग्राम मुल्क के सामने नहीं रखा होता, तो मुल्क गदर के समय जैसा अंगरेजी साम्राज्य द्वारा भले ही कुचल दिया जाता, पर वह आतंकवाद को अपनाता। इसी तरह आज शोषक वर्ग के विघटन के लिये जो क्रान्तिकारी मांग है उसको पूरा करने के लिये अगर आज विधान सभा की चहारदीवारी में बैठे रहेंगे और गांधीजी के बताये वर्ग-परिवर्तन के अहिंसक तरीके को नहीं अपनायेंगे तो चाहे देश छिन्न भिन्न होकर जर्जर हो जाय तो भी मुल्क के लोग विदेशी रूस से प्रेरित वर्ग संघर्ष के आतंकवादी कार्यक्रम को अपनायेंगे ही। आप उन्हें गैरकानूनी करार कर जेलखाना भेजें या गोली मारें तो भी रोक नहीं सकते। संसार के इतिहास में किसी क्रान्ति को आज तक गोली मार कर नहीं रोका जा सका है। क्रान्तिकारी प्रोग्राम को उसके बदले में ऊँचे क्रान्तिकारी प्रोग्राम द्वारा ही रोका जा सकता है।

आप सब कांग्रेस जन हैं। मुल्क की बागडोर आपके हाथ में है। आपको इन बातों को समझना होगा और चाहे कितनी तकलीफ हो जाय समस्या का समाधान आपको ही करना होगा। अगर आप इसे नहीं करते तो जिस तरह डेढ सौ वर्ष पहले अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी साम्राज्यवादी हमारी

भूमि पर संघर्ष करते रहे। उसी तरह आर्थिक मोर्चे के फाटक से अमेरिका तथा पूंजीवादी अधिनायक तंत्र, और सामाजिक मोर्चे के फाटक से रूस का कम्युनिस्टवादी अधिनायक तंत्र इसी भारत भूमि में घुस कर आपस में संघर्ष करेंगे। और जिस तरह डेढ सौ वर्ष पहले भारत की अपनी नीति तथा अपने नेतृत्व में कोओी कार्यक्रम चलाने की शक्ति के अभाव में मुल्क के बडे बडे मनीषी नेताओं ने दो साम्राज्यवादी शक्तियों में, जिनकी शक्ति अधिक थी और जिनका नारा ज्यादा मनोहर था, उनको आलिंगन किया ईश्वरीय विधान (Divine-dispensation) कहकर, उसी तरह आज इन दो अधिनायकवादी शक्तियों में से जिसकी ताकत अधिक होगी और जिसका नारा सुनने में ज्यादा अच्छा लगेगा, उन्हें आप आलिंगन करेंगे ऐतिहासिक आवश्यकता कह कर। अतएव आप इस बात को समझ लें। आप आज मोह में पड कर समय की मांग की ओर नहीं देखेंगे तो आप भी डूबेंगे और साथ साथ मुल्क को भी डुबोयेंगे।

प्रश्नोत्तर

कांग्रेस और सरकार का राष्ट्रवादी स्वरूप

१. **प्रश्नः**—आपने गांधीजी की क्रान्ति की जो बात कही उस दिशा में वर्तमान सरकार क्यों नहीं कदम उठाती? आखिर वे भी तो गांधीजी के शिष्य हैं?

उत्तरः—आज की सरकार कांग्रेसी सरकार है। अतः कांग्रेस क्या चीज है पहले उसे समझ लेना अच्छा होगा।

अब तक अंग्रेजों के हाथ से देश को मुक्त करने के लिये एक संयुक्त मोर्चा बना हुआ था। इसमें कई किस्म के लोग शामिल थे और उनके उद्देश्य भी विभिन्न थे। पूंजीपति देखते थे कि जनता का जितना शोषण हो रहा है उसका अधिकांश अंग्रेज ले जाते हैं, उनके पल्ले बहुत थोडा

पड़ता है। अिसलिये वे अंग्रेजों को हटाने के लिये कांग्रेस में शामिल हुए। कुछ संभ्रांत तथा शिक्षित वर्ग के लोग देखते थे कि उनके पास धन, शिक्षा तथा योग्यता होते हुए भी कम धनी तथा कम शिक्षित अंगरेज उन पर रोब जमा रहे हैं। अंग्रेज जाने पर यह रोब उनके हाथ लगेगा। अतः वे भी कांग्रेस में शामिल हुए। संप्रदायवादी कांग्रेस में शामिल हुए अंग्रेजों को भगा कर हिन्दूराज्य स्थापित करने के लिये, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट अंग्रेजों का राज्य समाप्त होने पर उनको मौका मिलेगा अिसलिये आये, और गांधीजी की धारणानुसार आर्थिक तथा सामाजिक ढांचे के मुताबिक मुल्क को बनाने पर विश्वास रखनेवाले अंगरेजों को हटाना चाहते थे अपने क्रान्ति के रास्ते का एक अड़ंगा हटाने के लिये। इनके अलावा कांग्रेस में बहुसंख्यक ऐसे लोग थे जो पुराने तरीके के राष्ट्रवादी थे। वे सिर्फ विदेशियों के गुलामी से छुट्टी पाना चाहते थे। उनका कोई निश्चित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का सिद्धांत नहीं था। कांग्रेस में अधिकांश ऐसे ही लोग थे। गांधीजी की आर्थिक नीति पर विश्वास रखने वाले तो इनेगिने थे। सब गांधीजी के अनुयायी थे, इसलिये अनुयायी थे कि अंग्रेजों को मुल्क से हटाने का काम गांधीजी के नेतृत्व में ही हो सकता था। यही कारण है कि सितंबर ४४ में जब गांधीजी जेल से छूट कर आये तो कार्यकर्ताओं से दिल खोल कर बात करते समय उन्होंने कहा था, "कांग्रेस ने चरखा अपनाया तो सही, लेकिन क्या उसने यह अपनी खुशी से अपनाया ? नहीं, वह तो चरखे को मेरे खातिर बरदाश्त करती है।"

अब अंग्रेज गये। मुल्क की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आयी।

कांग्रेस के अधिकांश सिर्फ राष्ट्रवादी होने के कारण मुल्क की सरकारी बागडोर स्वभावतः उनके हाथ में गयी और जो व्यवस्था चल रही थी, उसीको ये चला रहे हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य मुल्क को अंग्रेजों के हाथ से मुक्त करने का था। वह उद्देश्य उन्होंने पूरा कर लिया है। उन्होंने कोई निश्चित आर्थिक या सामाजिक क्रान्ति की बात नहीं सोची थी। ये न पूंजीवादी हैं, न मार्क्सवादी, न गांधीवादी। आज की सरकार का

स्वरूप राष्ट्रवादी है। और केन्द्रीय उद्योगवाद के चालू तरीके पर ही भरोसा रखने के कारण परिस्थितिवश उनपर पूंजीवादी असर है। उन्हें गांधीजी के खातिर 'चरखे को बरदाश्त करने' की अब क्या जरूरत रह गयी?

गांधीजी की क्रान्ति कार्यकर्ता ही ला सकते हैं, सरकार नहीं

अतः वर्तमान सरकार द्वारा गांधीजी की आर्थिक तथा सामाजिक क्रान्ति के सम्पादन का भरोसा नहीं करना चाहिये। उनमें खुद की कोई निश्चित आर्थिक व्यवस्था का विचार न होने के कारण वे हमारे काम का विरोध न करेंगे; बल्कि पुराने साथी होने के कारण कुछ सहायता ही करेंगे। मैं जानता हूं कि इस बारे में लोगों का दिमाग साफ नहीं है। जो लोग गांधीजी की सामाजिक क्रान्ति पर विश्वास करते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि आज जिनके हाथ में मुल्क की बागडोर है वे उनके स्वजन हैं, स्वधर्मी नहीं। हां यह जरूर है कि जहां तहां मंत्रीमंडलों में एकाध व्यक्ति ऐसे भी हैं कि जो गांधीजी की आर्थिक नीति पर विश्वास रखते हैं। लेकिन एकाध व्यक्ति से नीति नहीं बनती है, न बन सकती है। अतः हमें अपना धर्म चलाने के लिये जनता के साथ बैठ कर स्वतंत्र तपस्या करनी होगी। सरकार में स्वजन हैं इसलिये कुछ सहूलियत भले ही मिल जाय, पर उनके भरोसे नहीं रहा जा सकता।

अब प्रश्न यह है कि हमारा सरकार से संबंध क्या हो? मैंने पहले बताया है कि वे हमारे स्वजन हैं। अतः जहां हमें जनता में काम करके उसे तैयार करना है; वहां सरकार में जो लोग हैं उन्हें अपने काम से कायल भी करना है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि अगर वे संपूर्ण कायल हो भी जायं, या गांधीजी की अर्थनीति और समाजनीति के मानने वाले ही पद पर आ जावें, तब भी केवल उनके भरोसे गांधीजी की क्रान्ति का प्रसार नहीं हो सकता है।

अशोक के सम्राट होने से ही राज्यकर्मचारी द्वारा बुद्ध धर्म का प्रचार नहीं हुआ था। उसके लिये भिक्षुकों की आवश्यकता थी। वस्तुतः

विभक्त है—शोषक और उत्पादक। जिस हद तक शोषक वर्ग का फैलाव रहेगा उस हद तक उत्पादक के श्रम का अपहरण होता ही रहेगा। यही कारण है कि गांधीजी शोषक वर्ग को विघटित कर संसार को शोषण से रहित बनाना चाहते थे। यानी गांधीजी का आदर्श समाज शासनहीन तथा श्रेणीहीन समाज के रूप में है। अतः जहां सब लोगों को उत्पादक बन कर समाज में श्रेणीहीन समाज स्थापित करना है वहां शासनहीन समाज की स्थापना कर व्यवस्था के लिये एक विशेष वर्ग की आवश्यकता का ही लोप करना है।

मार्क्सवाद और गांधीवाद में अन्तर

प्रश्न ४ :—आप कहते हैं कि गांधीजी की कल्पना के शोषणहीन समाज का मतलब शासनहीन तथा वर्गहीन समाज से है। मार्क्सवाद भी तो यही कहता है। फिर मार्क्सवाद और गांधीवाद में क्या अंतर है?

उत्तर :—किसी वाद में कोई फर्क नहीं रहता। युग युग के अवतार और ऋषियों के उद्देश्य एक ही होते हैं। केवल भिन्न भिन्न युग के मानसिक तथा सामाजिक परिस्थिति के अनुसार उनकी दृष्टि तथा कार्य-प्रणाली में फर्क हुआ करता है। दूसरी बात यह है कि परंपरा से नये ऋषि पिछले मार्गों पर जमाने के अनुभव के अनुसार अपने तरीके से कुछ नया शोध किया करते हैं। ईसा का "पृथ्वी पर स्वर्गराज्य", रूसो का "जनवाद," कार्लमार्क्स का "शासनहीन समाज" और गांधी का "रामराज्य" सब एक ही कल्पना के द्योतक हैं। अर्थात् सभी चाहते थे कि दुनिया के मनुष्यों पर मनुष्य का शासन या शोषण न रहे। अतः इस दृष्टि से गांधीवाद और मार्क्सवाद में कोई फर्क नहीं है। दोनों का अंतिम ध्येय शासनहीन तथा वर्गहीन समाज की ओर जाने का है।

लेकिन अंतिम ध्येय आदर्श स्थिति होता है। और आदर्श स्थिति रेखागणित की बिन्दुवत् कल्पना सी ही की जा सकती है, देखी नहीं जा सकती। मनुष्य को अनंत काल तक उस ओर प्रगति करते रहना है, ताकि वह लक्ष्य की ओर चलते हुए अपनी स्थिति सुधारता रहे।

मनुष्य की आदर्श स्थिति से, यानी उस स्थिति से जिस पर प्रत्यक्ष रूप से पहुंचा नहीं जा सकता, कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रहती। उसकी दिलचस्पी तो इस बात पर रहती है कि इस अनंत की ओर की यात्रा के रास्ते में उसकी क्या दशा रहती है। विश्वास रखकर मोक्ष प्राप्ति की इंतजारी का धैर्य साधारण मनुष्य में नहीं रहता। अतः आदर्श प्राप्ति का मार्ग कैसा है इसी मनुष्य के मुख्य प्रश्न पर कम्युनिस्टों और गांधीजी का मौलिक मतभेद है।

साम्यवादी तरीका

कम्युनिस्ट समाज को शासनहीन करना चाहते हैं, शासन को संगठित कर। यानी वे शासन को विघटित करना चाहते हैं, उसका दायरा मनुष्य पर क्रमशः बढ़ाते हुए। शायद वे ऐसा करने के लिये प्रकृति के एक मूल सिद्धान्त के अनुसार चलना चाहते हैं। वे उच्च कोटि के वैज्ञानिक हैं, इसलिये कदाचित् उनकी विचारधारा प्रकृति के नियमानुसार ही चल रही है। प्रकृति का नियम है किसी वस्तु के पूर्णत्व प्राप्ति के बाद पंचत्व प्राप्ति होना अवश्यंभावी है। इसलिये संभवतः उनकी धारणा यह है कि शासन को लगातार संगठित करते रहने से जिस दिन उसका पूर्ण विकास हो जायगा उस दिन वह अपनेआप सूख जावेगा। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्य-सिद्धि के लिये मनुष्य के जीवन पर शासन का दायरा बढ़ाते चले जा रहे हैं। लेकिन ऐसा करने से मनुष्य की आजादी की प्रगति नहीं हो सकती। क्यों कि शासन-संगठन की प्रगति जनता की मौलिक आजादी की अधोगति से ही संभव हो सकती है। अतः शासनहीन समाज की दिशा में कम्युनिस्टों के तरीके से चलने से जब तक किसी अनंत काल के बाद शासन सूख नहीं जाता तब तक मनुष्य की स्वतंत्रता का दिन-प्रति-दिन ह्रास ही होता जावेगा।

गांधीवादी तरीका

गांधीजी शासनहीन समाज की दिशा में बढ़ने के लिये शासन को संगठित करने का रास्ता पकड़ने के बदले प्रथम से ही शासन-विघटन का

मार्ग लेते हैं। वे अपने उद्देश्य की ओर प्रगति के लिये मानव-समाज को कहते हैं कि वे प्रारंभ से ही शासन का दायरा घटा कर जन-स्वावलंबन का दायरा बढ़ाते चलें, जिससे अंतिम स्थिति तक पहुंचने तक शासन स्वयं ही शून्य होकर जनता का स्वावलंबन पूर्ण हो सके। ऐसा करने से जनता को अपनी स्वतंत्रता के लिये किसी अनिश्चित काल तक इंतजार नहीं करना होगा। बल्कि वे अपनी चेष्टा से जिस समय जिस हद तक स्वावलंबन का संगठन कर सकेंगे उस हद तक समाज को शासनहीन बना कर अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकेंगे। अर्थात् मार्क्सवादी तरीके से आदर्श की ओर प्रगति से जहां मनुष्य की स्वतंत्रता निरंतर कुंठित होती जाती है, गांधीजी के तरीके से उस ओर बढ़ने के साथ साथ ही मानव-स्वतंत्रता की प्रगति होती जाती है।

उसी प्रकार से श्रेणीहीन समाज तक पहुंचने के लिये मार्क्स-मार्ग और गांधी-मार्ग में मौलिक भिन्नता है। मैंने अभी आपको बताया है कि कम्युनिस्टों का वर्ग-संघर्ष का तरीका हिंसात्मक और गांधीजी का वर्ग-परिवर्तन का तरीका अहिंसात्मक है। मैंने अभी यह भी बताया है कि किसी प्रकार के परिवर्तन का हिंसात्मक तरीका केवल अवैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि विफल भी होता है। इस सिलसिले में आपको एक बात और समझ लेनी चाहिये कि किसी चीज का आमूल परिवर्तन क्रान्तिकारी मार्ग से ही संभव हो सकता है। वस्तुतः हिंसा और क्रान्ति एक दूसरे के विरोधी हैं। हिंसा से क्रान्ति न होकर महज ध्वंस ही हुआ करता है। मनुष्य को हिंसा करने की प्रवृत्ति तभी होती है जब वह परिवर्तन से निराश हो जाता है। जब तक उसमें परिवर्तन की आशा बनी रहती है तब तक हिंसा द्वारा नाश करने की प्रवृत्ति जागृत हो ही नहीं सकती। अर्थात् हिंसा तभी की जाती है जब मनुष्य क्रान्ति से निराश हो जाता है। हिंसा एक निराशावादी भावना है। ऐसी निराशावादी प्रवृत्ति से दुनिया में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। अतः वर्गहीन समाज की दिशा में जहां कम्युनिस्टों का तरीका अवैज्ञानिक, निष्फल तथा निराशावादी है,

वहां गांधीजी का तरीका स्वाभाविक, विज्ञान-सम्मत, प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी है।

इस तरह गांधी तथा मार्क्स दोनों की सहानुभूति और भावना एक ही दिशा में होते हुए भी दोनों के दृष्टिकोण में मौलिक भिन्नता है, गांधीजी जहां व्यक्ति की पुष्टि के माध्यम से समाज की पुष्टि देखना चाहते हैं वहां मार्क्स समाज व्यवस्था की पुष्टि कर व्यक्ति को एक ढांचे में ढालना चाहते हैं। एक चेतन का उपासक है और दूसरा जड का।

मौलिक आवश्यकताएं और स्वावलंबन

प्रश्न ५:—अगर गांधीजी का तरीका शासन के दायरे को घटाना ही है तो उसके लिये केन्द्रीय उत्पादन का आसान तरीका छोडकर चरखा चलाने की क्या जरूरत? हम ऐसा विधान बना सकते हैं कि सरकार के हाथ में कम से कम अधिकार देकर पंचायत के हाथ में सारा अधिकार दें। आपने जो कहा कि हम सोने के भरोसे उत्पादन करें तो अमेरिका के पंजे में जाने का भय है। लेकिन यह तो एक अस्वाभाविक स्थिति है। स्वाभाविक स्थिति में हर मुल्क में सोने का समान वितरण होने पर भी चरखा चलाने की जरूरत पडेगी क्या?

उत्तर:—इस प्रश्न को समझने के लिये आपको इस बात पर विचार करना पडेगा कि सामाजिक ढांचे का आधार क्या होता है। आपको मालूम होना चाहिये कि समाज का प्रकार उत्पत्ति के तरीके पर निर्भर करता है। उत्पत्ति का तरीका उसके साधन पर निर्भर है। अगर आप उत्पत्ति के तरीके को केन्द्रित रख कर शासन को विकेन्द्रित करने की कोशिश करेंगे तो उसमें आपको सफलता नहीं मिलेगी। क्योंकि उत्पत्ति का यंत्र केन्द्रित रखेंगे तो उसको चलाने के लिये किसी प्रकार के केन्द्रीय संचालकों की आवश्यकता रहेगी। उसका संचालन आज दो तरीकों से होता है, आप उसे पूंजीपतियों द्वारा चलवायें या सरकार द्वारा। अगर आप पूंजीपतियों से संचालन करवायेंगे तो जनता की जान एक वर्ग के हाथ में होगी

और सरकार द्वारा चलावेंगे तो वह एक दल के हाथ में होगी। इस तरह जनता की जान हमेशा किसी दल या वर्ग की मुट्ठी में पड़ी रहेगी। सिर्फ एक स्थिति का नाम होगा पूंजीशाही और दूसरी स्थिति का नाम होगा नौकरशाही। जनता के जिन्दा रहने के साधन पर कब्जा होने के कारण दोनों ही उनपर हावी होकर अधिनायक बन जावेंगे। जैसा मैंने पहले कहा था कि लिपटन की चाय और ब्रुकबॉंड की चाय के गुण में कोई फर्क नहीं है, केवल शायद सुगंध का है, उसी तरह पूंजीशाही अधिनायकवाद और नौकरशाही अधिनायकवाद के गुणों में कोई विशेष फर्क नहीं है। फर्क है केवल नारों का। इसलिये गांधीजी जनता को जिन्दगी की मौलिक आवश्यकता के लिये स्वावलंबी बनने की सलाह देते हैं, ताकि जान अपने हाथ में होने के कारण जब जब शासन-शक्ति जन सत्ता को निर्दलित करने की चेष्टा करेगी तब तब जनता उसके खिलाफ विद्रोह करने की ताकत अपने पास निरंतर कायम रख सकेगी। क्यों कि अगर जान कायम रखने के साधन केन्द्र के हाथ में रहेंगे तो जनता कभी भी *असहयोग या सत्याग्रह नहीं कर सकेगी। मनुष्य की मूल प्रवृत्ति आत्म-*रक्षा है। इसलिये जब कभी उसे अपनी आत्मरक्षा और आजादी की रक्षा के बीच चुनाव करना होगा तो वह आजादी की रक्षा को छोड़ कर प्राण की रक्षा को पसंद करेगा।

अतः प्रश्न यह नहीं है कि सोना अमेरिका का है या देश का। प्रश्न यह है कि उस सोने पर कब्जा किस का है। पूंजीवादी प्रभुत्व स्वदेशी हो या विदेशी, जनता के लिये उसमें कोई फर्क नहीं होगा। जैसे किसी भेड़ को पूछा जाय कि तुम्हें शेर खाय या भेड़िया, तो वह क्या जवाब देगी? उसी तरह जनता के लिये विदेशी पूंजीपति या स्वदेशी पूंजीपति के शोषण में क्या फर्क है?

यह तो हुआ स्वाभाविक स्थिति होने पर जनता की क्या हालत होगी उसका जवाब। लेकिन आज तो अस्वाभाविक स्थिति है ही। आपको वस्तुस्थिति पर ही विचार करना है। वस्तुस्थिति यह बतलाती है कि

...ने अगर अपने जीवन को आज की परिस्थिति में सोने के भरोसे डाला
...अमेरिका के पंजे में फंसना ही पड़ेगा। शेर के पेट में एक वक्त घुसने
...बाद आप की अर्थशास्त्रीय दलील से मदद नहीं पहुंच सकेगी।

...सरकार, सहकार और स्वावलंबन

प्रश्न ६:—आपने यह कहा है कि जनता को आजादी कायम ...ना है तो जीवन-धारण की मुख्य सामग्री के लिये स्वयंपूर्ण होना चाहिये। ...न्दगी की मौलिक आवश्यकता के अलावा बहुतसी ऐसी चीजें हैं कि जिनके लिये केन्द्रीय उत्पादन लाजमी है। और आज की दुनिया में हम उनके बिना काम भी नहीं चला सकते। ऐसे उद्योगों को आप पूंजीपतियों के हाथ में रखेंगे या सरकार द्वारा संचालन करावेंगे।

उत्तर:—यह तो साफ ही है कि जिन उद्योगों का अनिवार्यतः केन्द्रीकरण करना होगा उन्हें पूंजीपतियों के हाथ में रखना ही नहीं है। लेकिन हम उन्हें सरकार के हाथ में भी नहीं रखना चाहते। आज सभी लोग यह कहते हैं कि न्याय और शासन विभाग एक ही हाथ में रखा जावे, क्यों कि सभी मानते हैं कि ऐसा करने से न्याय का यन्त्र शासन के सेवक के रूप में इस्तेमाल किया जावेगा। उसी तरह दमन-यंत्र और उत्पादन-यंत्र अगर एक ही हाथ में रखा जाय तो उत्पादन-यंत्र भी दमन के सेवक के रूप में इस्तेमाल होगा। और इसके नतीजे से सरकार अधिनायक तंत्रता की ओर झुकती जायगी। आप उत्पादन-यंत्र पूंजीपति के हाथ इसलिये नहीं देना चाहते हैं कि आपका अनुभव है कि पूंजीपति उस यंत्र को जनता के शोषण के लिये इस्तेमाल करते हैं। लेकिन हमारा अनुभव यह है कि, सरकार के हाथ में जाकर वह जनता के निर्दलन के काम में इस्तेमाल होता है। अतः हम सरकार के हाथ में सिर्फ शासन व्यवस्था की जिम्मेवारी रखकर केन्द्रीय उत्पादन व्यवस्था के लिये सहकारी के नाम से अलग संस्था का संगठन करेंगे। ऐसी संस्था पर जनता का लोकतांत्रिक अनुशासन तो रहेगा ही, लेकिन इसके अलावा सरकार का भी इतना नियंत्रण रहेगा जिससे संपत्ति की हिफाजत

संबंधी किसी प्रकार की गडबडी न हो सके। इस तरह समाज का ढांचा पूर्ण त्रिकोण के रूप में रहेगा। शासन के लिये सरकार, अनिवार्य केन्द्रित उत्पादन के लिये "सहकारी कोआपरेटिव" और मौलिक आवश्यकता के लिये जन-स्वावलंबन। जन-स्वावलंबन शासन को अधिनायक बनने से रोकेगा। और शासन जनता की स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता में परिणित होने से रोकेगा। सहकारी के हाथ में दमन यंत्र न होने के कारण उत्पादन के साधन का दुरूपयोग नहीं होने पावेगा।

कल-कारखानों से उत्पत्ति का ह्रास

प्रश्न ७ :—आप जनता की मौलिक आवश्यकता-पूर्ति के लिये चरखा चलाना चाहते हैं, लेकिन आज जनसाधारण की दैनिक सामग्री का भी अभाव हो गया है। आज जोरों से उत्पत्ति बढाने की आवश्यकता है। कलकारखानों के बिना उत्पत्ति की वृद्धि कैसे होगी?

उत्तर :—आप लोग जब इस दिशा में विचार करते हैं तब पूंजीवादी समाज के पंडितों की बातों में बहुत ज्यादा आ जाते हैं। वस्तुतः कल-कारखानों से उत्पादन बढता नहीं है। उससे तो काम जल्दी होता है और श्रम कम लगता है। क्या आप ढेंकी को छोड कर चावल की मिल चलाकर एक मन धान से कुछ अधिक चावल निकाल सकेंगे? चक्की चला कर एक मन गेहूं से जितना आटा निकलता है उससे ज्यादा आटा निकालने की मशीन का क्या किसी वैज्ञानिक ने अविष्कार किया है। कुछ लोगों का भ्रम है कि ट्रॅक्टर आदि चलाने से भूमि से ज्यादा पैदावार की जा सकती है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि कहीं कहीं ट्रॅक्टर चलाकर ज्यादा पैदावार की जो रिपोर्ट आप को मिलती है उसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने हल के बजाय ट्रॅक्टर से जमीन को जोता, बल्कि उसका कारण यह है कि जिनके पास ट्रॅक्टर होते हैं उनके पास अन्य साधन भी बहुतायत से होते हैं। हल चलानेवाले साधन-हीन किसान को अगर ट्रॅक्टरवालों के बरोबर खाद, पानी आदि साधन मिल जायं तो उनके यह

भी ट्रैक्टर-वालों से अधिक उपज हो सकती है। इसकी रिपोर्ट भी कम नहीं है। इसलिये मैं कह रहा था कि आप लोगों का जो यह खयाल है कि कल-कारखाने से पैदावार बढ़ती है वह एक वहम मात्र है। शताब्दियों से पूंजीवादी प्रचार के कारण इस प्रकार बहुत से वहम हमारे दिमाग में बैठ गये हैं। इस प्रकार के वहम किस प्रकार पैदा होते हैं इसका अगर अनुभव लेना चाहते हैं तो आप दिल्ली चले जाइये। वहां बड़े बड़े नेता और पंडित अब यह कहने लगे हैं कि वनस्पति घी से मनुष्य को जितनी ताकत और स्वास्थ्य मिलता है उतना असली घी से नहीं मिलता। इस प्रकार की पूंजीवादी माया अगर सौ वर्ष तक चल गयी तो जनता में, असली घी में किसी किस्म की ताकत मिलती है कहने वाले, बेवकूफ समझे जाने लगेंगे।

इससे आप समझ सकते हैं कि कल-कारखाने की पैदावार में आदमी भले ही कम लगें और बेकारी भले ही बढ़े पर सामग्री की वृद्धि नहीं होती। इन बातों को कुछ भाई-बहन तो पहिले से ही जानते हैं, लेकिन मैं जो बात यहां स्पष्ट करना चाहता हूं उसका आप को शायद ध्यान ही नहीं है। वह यह है कि कल-कारखानों से जनता के उपयोग की सामग्री में वृद्धि न होकर वह निश्चित रूप से घट जाती है। वह इस प्रकार से होता है।

अनावश्यक आवश्यकताओं की सृष्टि

उत्पादन का मूल भूमि ही है। उद्योगों का केन्द्रीकरण हो जाने के कारण बहुत से आवश्यक बोझ भी इस भूमि पर लद जाते हैं, क्यों कि अनावश्यक आवश्यकताओं की सृष्टि केन्द्रीय उद्योगीकरण का मुख्य धर्म है। फैली हुई जमीन में धान पैदा कर किसी केन्द्रित कारखाने में कुटवा कर फिर से फैली हुई आबादी में वितरण करने की प्रक्रिया में दो प्रधान अनावश्यक आवश्यकताएं पैदा होती हैं—(१) पैकिंग का सामान और (२) यातायात का साधन। इन कारणों से हम देखते हैं कि दिन-प्रति-

दिन लाखों एकड़ धान की जमीन, सन और पटुआ के नीचे दबती चली जा रही है और यातायात की समस्या के कारण बहुतसी भूमि तथा भूमि से उत्पादित सामग्री बेकार चली जाती है।

केन्द्रीय उद्योगों के कारण आबादी केन्द्रित होकर बड़े बड़े शहरों की सृष्टि होती है। शहरों की घनी आबादी के कारण लोग किस तरह रहते हैं यह तो आप को मालूम ही है। दिनभर परिश्रम करने के बाद मनुष्य को तबियत बहलाने की आवश्यकता होती है। बिखरे हुए देहाती क्षेत्रों में शुद्ध वायु और प्राकृतिक सौन्दर्य ही इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये पर्याप्त है। किन्तु बंबई, कलकत्ता आदि घने शहरों के लिये साबुन, क्रीम, मिठाई आदि बनावटी सामग्रियों की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये भूमि की जरूरत है। इस कारण हम देखते हैं कि दक्षिण भारत में लोगों को चावल खाने को मिले या न मिले, धान की जमीन पर नारियल के पेड़ों की संख्या बढ़ती ही चली जा रही है। और उत्तर भारत में गेहूं के स्थान पर गेहूं की जगह गन्नों का प्रसार जोरों से बढ़ रहा है। क्यों कि शहरवालों को साबुन बनाने के लिये नारियल का तेल और उनकी मिठाई, चाय आदि के लिये चीनी की जरूरत है।

पूंजीवादी मुनाफा-वृत्ति ने लोगों में जीवन-मान ऊंचा करने का नशा चढ़ा दिया है। जब जीवन-मान नीचा था तब मनुष्य नीचे जमीन पर बैठे दाल-रोटी तथा घी-दूध भर पेट खाते थे। किन्तु अब जीवन मान ऊंचा कर, ऊंची टेबल कुर्सी पर बैठकर लोग छुरी, चमचा, कांटा, तथा तश्तरी, कटोरी के बहार से तृप्त होने लगे हैं और तन्दुरुस्ती को बढ़ाने के लिये कम खाने का आन्दोलन चला रहे हैं। स्पष्ट है कि जब खाना पैदा करने की जमीन के स्थान पर आप कुर्सी, टेबल आदि सामग्री पैदा करने लगेंगे तो आप के लिये अनिवार्य तौर से कम खाने का पाठ पढ़ाना ही होगा। कौन जाने शायद निकट भविष्य में लोग ऊंची छत पर बैठकर हवा खाने में ही अधिक विटॅमिन है ऐसा कह कर और जीवन मान ऊंचा

उठ गया है ऐसा मान कर उसमें ही संतोष मानने लगेंगे। जीवन-मान ऊंचा उठाने का विज्ञापन आप खास तौर से रेल के डिब्बों में देखेंगे। पहिले जब जीवनमान नीचा था तब डिब्बों में "धूम्रपान निषेध" की सूचना रहती थी। पर अब चूंकि जीवनमान अधिक ऊंचा उठ गया है इसलिये पुराने विज्ञापन की जगह यह लिखा रहता है कि लोग "बिडी-सिगरेट पीकर आग बुझा दें"। याने उनका कहना है कि ऊंचे जीवनमान के मुताबिक वे बिडी-सिगरेट जरूर पीयें लेकिन संसार में आग न लगावें। मेरे कहने का मतलब यही है कि पूंजीवादी प्रचार के नतीजे से टेबल, कुर्सी, पर्दा, कांटा, चम्मच, तश्तरी आदि सामान तथा बीडी, सिगरेट, चाय, काफी, पान, तंबाकू आदि व्यसन के सामान के लिये भी बहुतसी ऐसी जमीन दब रही है जिसपर कि जनता की मौलिक आवश्यकता का सामान पैदा हो सकता था।

सैनिक संगठन की सृष्टि

उपरोक्त कारण के अलावा कल-कारखानों के कारण एक बडी जबरदस्त परिस्थिति पैदा होती है, जिससे मानव-समाज अत्यधिक अभाव का शिकार बनता चला जा रहा है। आप के पास अगर दो-चार पैसे हों तो आप निश्चिन्त होकर कहीं भी पडे रह सकते हैं, अगर दस-बीस रुपया हो तो एक बटुये की आवश्यकता होती है। हजार-दो-हजार हो जाने पर लोहे के सन्दूक की और उससे अधिक संपत्ति पास रखने के लिये दरवाजे पर संतरी रखने की आवश्यकता हो जाती है। मतलब यह कि जैसे जैसे संपत्ति केन्द्रित होती जाती है वैसे ही उसकी रक्षा की समस्या बढती जाती है। जब सारे राष्ट्र की संपत्ति थोडे स्थानों में केन्द्रित हो तो बाहरी तथा भीतरी दुश्मनों के लिये विशेष रूप से सैनिक संगठन की आवश्यकता होती है।

किसी चीज का जन्म उसके स्वभाव व स्वधर्म के अनुसार कर्म लेकर ही होता है। सैनिक का स्वभाव व स्वधर्म युद्ध करने का है। अतः

अनिवार्य रूप से उसको अपने स्वधर्म के अनुसार कर्म करना ही है। इसलिये वह सदा लड़ाई का बहाना ढूंढता रहता है। अगर दूसरा बहाना नहीं मिले तो 'युद्ध-समाप्ति के लिये ही युद्ध' करने में लगेंगे (वेज वार टू एन्ड वार)। ठीक ही है, शेर का स्वधर्म ही भेड को खाना है तो उसके लिये इतना बहाना काफी है कि उस भेड के बाप या दादा किसी ने नदी के पानी को गंदा किया था।

इस तरह कल-कारखाने के जरिये संपत्ति के केन्द्रीकरण के कारण हम युद्ध की परिस्थिति पैदा करते हैं और जब किसी न किसी बहाने युद्ध छिड जाता है तो उसे चलाने के लिये हमें उद्योग को बढाना पडता है। इस प्रकार दुनिया में "उद्योग की रक्षा के लिये युद्ध" और "युद्ध संचालन के लिये उद्योग" के एक विषचक्र [विशस सर्कल] की सृष्टि होती है। यह चक्र जनता की मौलिक उपयोग की कितनी सामग्री हजम कर जाता है इसके विवरणको दो विश्व-युद्ध के बाद शायद किसी को समझाने की आवश्यकता न होगी। आपने देखा ही होगा कि जनता चाहे दाने दाने को तरसे, लेकिन युद्ध में करोडों मन केसिन, स्टार्च आदि सामग्री की आवश्यकता अनिवार्य ही है। अगर मैं ऐसी चीजों की फेहरिश्त गिनाने बैठूं जिसके कारण लोगों के उपभोग की सामग्री कम हो जाती है, तो शायद आपको कई दिन यहां बैठे रहना पडेगा। मैं समझता हूँ कि अब मैं आपका अधिक समय न लूं। मेरे इतने इशारे के बाद आप गहराई से विचार कर इस बात को समझ सकेंगे कि कल-कारखाने से जनता के उपयोग की वृद्धि न होकर कमी ही होगी। और आगे सोचेंगे तो आपको स्पष्ट दिखाई देगा कि कारखानों के कारण भारत जैसी घनी आबादी के मुल्क में बेकारी की एक संकटपूर्ण समस्या खडी हो जावेगी।

सहकारी तथा सामूहिक खेती

प्रश्न ८ :—उद्योग के बारे में तो आपने बताया पर जमीन का होगा? उसका बटवारा कैसे होगा?

उत्तर:—हवा, पानी जैसे जमीन भी प्रकृति की निजी संपत्ति है। यह किसी व्यक्ति, वर्ग या दल की चीज नहीं है। इसलिये प्राचीन भारत में "सब भूमि गोपाल की" ऐसा माना गया। जिस तरह हवा और पानी मनुष्य की उतनी ही निजी संपत्ति है जितनी वह सांस लेकर और पीकर अपना सके, उसी तरह कोई भी व्यक्ति उतनी ही जमीन अपनाने का हकदार है जितने पर वह अपने शरीरश्रम से पैदा कर सके। अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार छोटे छोटे टुकडे लोग जोतने लगें तो जमीन का पूरा उपयोग कैसे होगा? इस समस्या को हल करने के लिये सहयोगी तरीके से खेती करनी होगी। गांववालों को अपने क्षेत्र की परिस्थिति के अनुसार यह तय करना होगा कि कम से कम कितनी जमीन एक साथ जोतने पर अधिक से अधिक पैदावार हो सकेगी। यह बात गांव की पंचायत तय करेगी। ऐसा तय हो जाने के बाद जितने लोग उस जमीन को जोत सकेंगे उतने लोग मिल कर सहकारिता के आधार पर खेती करेंगे। इस तरह खेती का बटवारा तो शरीरश्रम की शक्ति के अनुपात से ही होगा, लेकिन खेती का कार्यक्रम सहयोगी खेती का रूप लेगा। क्रमशः सहकारिता का विकास हो जाने पर गांवभर की खेती का सामूहिक रूप भी हो सकेगा।

सरकारी दबाव द्वारा क्रांति नहीं होती

प्रश्न ९:—अगर आज की सरकारी आर्थिक नीति गांधीवादी नहीं है तो गांधीजी की धारणानुसार रचनात्मक काम करनेवाले लोग अधिकार को कब्जा कर गांधीजी का काम क्यों नहीं चलाते?

उत्तर:—शासन के दबाव से जनता पर किसी सिद्धान्त को लादने की चेष्टा से ही दुनिया में अधिनायक तंत्र का विकास होता है, यह हम इतिहास के पन्नों पर देख चुके हैं। सरकारी कानून से कोई काम कराना लोकशाही की मर्यादा के अंतर्गत तभी होता है जब लोगों की आम आकांक्षा उस पक्ष में तो होती है लेकिन अनभ्यास और सुस्ती के कारण ही वे उसे नहीं अपना पाते हैं। इसलिये आज हमारा काम है, गांधीवादी आर्थिक

तथा सामाजिक विप्लव की बात के लिये जनता में आम आकांक्षा पैदा करना। फिर सरकार को कब्जा कर उसके द्वारा जनता पर अपनी बात लादने की जरूरत नहीं रहेगी। हमारा तरीका जनता को अपना कर उसके द्वारा सरकार पर दबाव डालने का होगा, न कि सरकार को कब्जा कर उसके द्वारा जनता को मजबूर करने का। अतः आज जो लोग गांधीजी के निर्देशानुसार मुल्क में आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक क्रान्ति करना चाहते हैं उन्हें गद्दी पर कब्जा करने का मोह छोड़कर, नयी क्रान्ति की चिनगारी बन कर जनता में फैल जाना होगा।

जनता का उद्बोधन

प्रश्न १०:—आप ने अभी कहा है कि हमें सत्ता को कब्जा करने की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर आप इतिहास को देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि सत्ता को कब्जा कर के ही अबतक "किसी ने कुछ" किया है।

उत्तर:—आप ने मेरी बात ठीक नहीं समझी। शुरू से अब तक मैंने "किसी से कुछ" करने की बात नहीं कही। मैंने तो क्रान्ति की बात की है। आपने जब इतिहास का जिक्र किया तो मैं आपको इतिहास के बारे में भी कुछ बता दूं।

अगर आप इतिहास के पन्नों को देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि युग युग में लोगों ने जनता की ओर से दूसरों से सत्ता छीनी है-जन समाज के उद्धार की बात सोच कर, लेकिन बाद में उन्होंने स्वयं सत्तारूढ़ होकर फिर जनता पर राज्य जमा लिया है। किसी प्राचीन युग में मनुष्य ने आपसी हिंसा और संघर्ष से बचने के लिये राजाओं की सृष्टि की थी,—"महती देवता" के रूप में। धीरे धीरे राज्य-व्यवस्था की जटिलता के कारण उसीके द्वारा जनता पर अत्याचार होने लगा और जनता ने उसके खिलाफ फ्रान्स में राज्यक्रान्ति की। लेकिन जिनकी प्रेरणा से उसने की, बाद को उन्हीं के हाथ में समाज की सत्ता चले जाने से वे

निश्चिन्तता के साथ जनता का शोषण करने लगे। सामन्तवादी अत्याचार के स्थान पर पूंजीवादी शोषण ने घर कर लिया। जनता शिकंजे से निकलने के बजाय उसके नीचे और गहराई से दब गयी। ऐसी हालत में जनता के लिये फिर से लडने के सिवा दूसरा कोअी उपाय नहीं रह गया और उन्होंने रूस में दूसरी क्रान्ति की। लेकिन पहिले संग्राम से इसका नतीजा और भी भयंकर निकला। इस बार भी जिस दल ने जनता का नेतृत्व किया वही दल मजबूती के साथ जनता की छाती पर बैठ कर उसका सर्वतोमुखी निर्दलन करने लगा। फलतः आज संसार से पूंजीवादी शोषण का तो लोप हो रहा है, लेकिन एकदलीय अधिनायकवादी निर्दलन जनता को अधिक मजबूती से जकड रहा है।

अब आपको इस बात पर गौर करना है कि बार बार जनता की मुक्ति की चेष्टा विफल क्यों हो रही है। कारण वही है जिसके लिये आप ने प्रश्न पूछा। जो लोग जनता को आजाद करना चाहते हैं वे यह सोचते हैं कि हिंसा या अहिंसा से किसी तरह एक बार सत्ता का कब्जा मिल जाय तो हम सही माने में जनता को आजाद कर सकेंगे। इतना धैर्य नहीं होता है कि वे बेहोश जनता को होश दिला कर उनमें अपनी भलाई-बुराई समझने की शक्ति पैदा करें। जल्दी से कुछ कर डालने के मोह के कारण वे जनता को जोश दिला कर उस सत्ताधारी के खिलाफ लडा देते हैं जिसे वे बुरा समझते है। लडाई की समाप्ति के बाद जोश खत्म हो जाने से जनता फिर से बेहोश हो जाती है। ऐसी बेहोश जनता पर उनके नये नेता राज्य करने लगते हैं और अपनी कल्पना की बात उस जनता पर जबरदस्ती लादने लगते हैं। जबरदस्ती का अभ्यास इन नये नेताओं को भी जबरदस्त बनाता है। जबरदस्त व्यक्ति, वर्ग या दल जब शक्ति के आधार पर होते हैं तो स्वभावतः वे अधिनायक बन जाते हैं। ...

अगर रचनात्मक कार्यकर्ता अपने जीवन, विचार तथा कार्य द्वारा जनता को, गांधीजी के बताये हुए राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढांचे के स्वावलंबी सिद्धान्त पर कायम करने की चेष्टा के बजाय सत्ता पर दखल

करने का आधुनिक दलबन्दी का राजनैतिक तरीका अख्तियार करायेंगे तो वे भी पुराने नेताओं की तरह समय पाकर उसी जनता पर अधिनायक बन बैठेंगे। इसलिये उनका काम यह नहीं होना चाहिये कि वे खुद सत्ता पर कब्जा कर उसके द्वारा जनता की भलाई की बात सोचें, बल्कि वे जनता में आत्म-विश्वास पैदा कर उनमें अपनी स्वतंत्र सत्ता को संगठित करने की योग्यता पैदा करें ताकि कोई व्यक्ति, वर्ग या दल उनपर अधिकार न कर सके। रचनात्मक कार्यकर्ता का काम जनता में निरंतर स्वतंत्र प्रेरणा उद्बोधित करने का ही रहेगा, ता कि जो कोई भी सत्ता-रूढ हो, अगर वह जनता के अहित की योजना बना कर उसके निर्दलन की ओर बढने की कोशिश करे तो जनता क्रान्ति कर अपनी जिम्मेदारी तथा अधिकार को कायम रख सके। ऐसा करने से ही युग युग से नेताओं द्वारा बेहोश जनता की ओर से राज पर दखल कर जनता की भलाई करने वाली परोपकारी परिपाटी तोड कर जनता द्वारा आत्म-नियन्त्रण की क्रान्तिकारी योग्यता पैदा कर सकेंगे। नहीं तो आप की चेष्टा का भी वही नतीजा होगा जो कि पिछली क्रान्तियों में होता रहा है।

सत्ता और रचनात्मक कार्य

प्रश्न ११:—आपने अभी कहा कि आज की सरकार हमारी स्वजन है, पर स्वधर्मी नहीं। इसलिये उनके भरोसे नहीं रहा जा सकता। लेकिन अब आप कह रहे हैं कि स्वधर्मी भी सरकार में चले जायं तो वे कुछ न कर सकेंगे। यह कैसी बात ?

उत्तर:—मैं समझता हूं कि आप मेरी बात की जड नहीं पकड पाये। सवाल "कुछ" करने न करने का नहीं है। सवाल स्थायी रूप से जन-स्वतंत्रता का है। "कुछ" तो हमारे स्वजन भी कर रहे हैं। अगर स्वधर्मी सरकार में पहुंचेंगे तो "बहुत कुछ" कर सकेंगे। क्या रूस की कम्युनिस्ट पार्टी ने जनता के लिये काम नहीं किया ? लेकिन जहां तक जनता की मौलिक स्वतंत्रता का सवाल है, वहां वे एक दल की मुट्ठी के

नीचे इस कडाई से पड़े हुए हैं जैसा कि इतिहास में पहिले कभी नहीं पाया गया। सम्राट अशोक ने भी बहुत कुछ किया था। लेकिन मैंने तो आपसे यह कहा है कि सरकार पर कब्जा करके जनता को राहत देनेवाली परोपकारी वृत्ति से काम चलने वाला नहीं है, बल्कि जनता को स्वयं प्रेरित होकर आत्म-संचालन की योग्यता पैदा करने की क्रान्तिकारी चेष्टा करनी होगी। जनता के दुख से दुखी होनेवाले नेता जनता के लिये काफी त्याग और तपस्या करते हैं—इमानदारी के साथ जनता के हितार्थ। मनुष्य की वृत्ति परिस्थिति के अनुसार बनती-बिगडती है। सत्तारूढ होकर अपने हाथ से उसी सत्ता को जनता के हाथ में हस्तान्तरित करने की वृत्ति कायम रखना मुश्किल है। क्यों कि मनुष्य-स्वभाव कुछ अजीब हुआ करता है। इसलिये वे सही माने में हस्तान्तर की बात सोच नहीं सकते, बल्कि उनकी सहानुभूति-पूर्ण भावना के कारण जनता के दुख दूर करने वाली राहत वृत्ति से ही वे काम करने लगते हैं।

आपको मालूम है कि मनुष्य को इन्द्रत्व के लिये तपस्या करनी पडती है और शिवत्व के लिये भी। लेकिन तपस्वी होने पर भी इन्द्रत्व प्राप्ति के बाद वह दूसरे को तपस्या नहीं करने देता है। वह सारी शक्ति अपने ही हाथ में रखना चाहता है। इस तरह इन्द्र की चेष्टा के कारण दुनिया से तपस्या खत्म होकर प्रगति रुकने का खतरा रहता है। इसलिये पौराणिक ऋषियों ने इन्द्र के साथ साथ शिव की भी कल्पना की है। शिव हमेशा तपस्या करता है और दूसरे तपस्वियों की चेष्टा को नष्ट करने के बजाय उनको वरदान देता है। वह गणों के साथ गण जैसा ही रहता है। और अगर कोई भी शक्ति उसके गणों को सताने की चेष्टा करती है तो वह सारे संसार में तांडव की सृष्टि कर देता है। क्यों कि वह गणों के साथ रहकर उनमें हमेशा तांडवी शक्ति कायम रखने में अपने को तल्लीन रखता है।

मनुष्य-स्वभाव देवताओं से ऊंचा नहीं है। कितनी भी तपस्या क्यों न करें, इन्द्रासन के साथ इन्द्र-प्रकृति को पाना भी स्वाभाविक है। उसका

राज्य ज्यादह से ज्यादह जनता को राहत रूपी वर्षा पहुंचाने का ही होगा, लेकिन जनता अगर सत्ता अपने हाथ में लेने की कोशिश करेगी तो वह वज्र या अप्सरा को जरूर भेजेगा। इसलिये यह जरूरी है कि रचनात्मक कार्यकर्ता शिव बन कर जनता में घुल-मिल जाय और जब कभी किसी भी शक्ति से जनसत्ता-निर्दलन की चेष्टा हो तो उसका काम जनता में तांडव याने क्रान्ति करने की शक्ति पैदा करने का होगा। अगर दुनिया में शिव नहीं होगा तो इन्द्र चाहे जितना संसार का हित सोच कर भी आसनारूढ हो, उसका अधिनायकत्व संसार को जला देगा।

यह तो हुई मौलिक प्रश्न की बात। लेकिन देश की आज की स्थिति में गांधीजी के अनुयायियों में से जो लोग सत्ता को अपने हाथ में लेने के पक्ष में हैं; वे जरूर लें। इन्द्र और शिव दोनों की ही आज आवश्यकता है। लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अगर आप शिव बनकर और जनता के बीच में बैठ कर उन्हें मौलिक स्वतन्त्रता का होश न दिलायेंगे तो वास्तविक जन-तन्त्रता खतरे में होगी। अगर आप सत्ता का मोह छोड़ कर जनता में बैठे रहेंगे तो आपके जो स्वधर्मी सत्ता में रहेंगे उनके द्वारा गांधीजी के संदेश के प्रचार में सहूलियत होगी। यदि आप केवल सत्ता के भरोसे रहेंगे तो आपका सिद्धान्त डूब जावेगा। अशोक के सम्राट होने से भिक्षुओं के काम में गति मिली। लेकिन बिना भिक्षुओं के अशोक के साम्राज्य द्वारा बुद्धवाणी का प्रसार सम्भव नहीं होता यह मैं कह ही चुका हूं।

अतएव आपको स्पष्टरूप से यह समझ लेना चाहिये कि स्वधर्मियों के हाथ में सत्ता आने पर अपने काम की प्रगति में आसानी होती है, लेकिन सत्ता के भरोसे क्रान्ति का काम नहीं चल सकता।

औद्योगीकरण से घबड़ाने की जरूरत नहीं

प्रश्न १२:—आपकी मूल क्रान्ति की बात बहुत जचती है। दूसरी ओर की प्रवृत्तियों को भी तो देखना है। आप हमको यह

सलाह देते हैं कि हम सब कुँछ छोड कर क्रान्ति की चिनगारी बन कर जनता में बैठ जायं। लेकिन आज की सरकार अमेरिका से भी मदद मंगा कर देश के औद्योगीकरण की दिशा में जोरों से बढ़ रही है। उधर कम्युनिस्ट भी बढ रहे हैं। ऐसी हालत में हमारे जैसी छोटी छोटी चिनगारियां कहां तक जलती रहेंगी? क्या इस तरह पड़े रहने से ये चिनगारियां दब कर बुझ नहीं जावेंगी।

उत्तर:—आपकी क्या राय है? क्या पूंजीपति द्वारा जो बडे बड़े कारखानों को चला रहे हैं, उनमें या कम्युनिस्टों के साथ मिल जाने से वह क्रान्ति सफल हो जावेगी जो आपको अच्छी लग रही है। वस्तुतः कोई क्रान्तिकारी ऐसे घबडाता नहीं है। मनुष्य को क्रान्ति की बात तभी सूझती है जब समाज में दूषित व्यवस्था भयंकर रूप ले लेती है। वस्तुतः क्रान्तिकारी तब ही काम शुरू करता है। उस समय उसका रूप सूक्ष्म रहेगा और जिस पद्धति को मिटाने के लिये क्रान्ति है उसका विराट स्वरूप होगा ही। इतिहास में भी हमें ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं। जब कृष्ण यशोदा की गोद में यमुना तट पर बालक अवस्था में थे, ठीक उसी समय कंस का पराक्रम पराकाष्ठा पर पहुंच रहा था। कम्युनिस्म जिस समय लेनिन की गोद में साइबेरिया के जंगलों में बढ रहा था ठीक उसी समय पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी विस्तार चरम शिखर पर पहुंच रहा था। तो फिर जिस समय गांधीवादी क्रान्ति चिनगारी के रूप में साधक की गोद में भारत की सुदूर देहातों मे विकसित होती रहेगी उसी समय दुनिया में अधिनायकवाद भी विराट रूप में प्रकट होगा। यह कोई नयी बात नहीं है। लेकिन अगर आप विश्वास तथा होश के साथ सही क्रान्तिकारी चिनगारी बन कर गांव गांव में फैलते रहेंगे तो आज की दुनिया का संकट चाहे जितनी भयंकर मूर्ति धारण किये हुये हो, उसका अंत होगा ही। इसलिये आप लोगों में से जो इस काम में लगना चाहते हैं उन्हें ऐसी बातों से घबडाना नहीं है।

युद्ध और क्रान्ति का भेद

प्रश्न १३ :—आपने कहा कि अगर हम नहीं चेतेंगे तो अमेरिका और रूस हमारे में घुस आवेंगे। लेकिन आज न अमेरिका ही है और न रूस। अंगरेज भी चले गये फिर भी जनता को इतनी तकलीफ क्यों?

उत्तर—मैंने आपको अमेरिका और रूस की बात कही है वह तो एक आपके लिये तात्कलिक खतरे की ओर संकेत मात्र है। लेकिन दुनिया में तात्कालिक समस्याओं के अलावा कुछ स्थायी समस्यायें भी होती ही हैं, और क्रान्ति उन्हीं के लिये की जाती हैं। रूस और अमेरिका के प्रभाव से अपने को बचाना तो एक सामान्य मोर्चा है। यह युद्ध का ही एक हिस्सा है। इसे आप क्रान्ति नहीं कह सकते। किसी मुल्क के खिलाफ जो लडाई लडी जाती है उसे युद्ध कहते हैं। अंगरेज चले जाने पर भी हमारे देश की हालत खराब क्यों है इसे समझने के लिये ही आपको युद्ध और क्रान्ति का भेद समझना चाहिये। और हम जो अबतक लडते रहे उस लडाई का भी स्वरूप क्या है उस पर भी विचार कर लेना चाहिये।

जब कभी किसी व्यक्ति, वर्ग, दल या जाति के हाथ से सत्ता हस्तान्तरित करने की लडाई होती है तो उसे युद्ध कहते हैं। और जब किसी पद्धति का रूपान्तर करने की चेष्टा होती है तब उसे क्रान्ति कहते हैं। मैंने अभी आपको बताया कि फ्रान्स और रूस में क्रान्ति के नाम से जो संघर्ष चला था वह पहले व्यक्तियों के हाथ से वर्ग के हाथ में और फिर वर्ग के हाथ से दल के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करने का युद्ध मात्र था। उसका नतीजा भी मैंने आपको बताया है। गांधीजी ने जब भारतीय संग्राम छेडा था तब जनता को बार बार चेतावनी दी थी कि हमें केवल अंगरेजों को हटाने का युद्ध नहीं करना है, बल्कि पद्धति के परिवर्तन की क्रान्ति करनी है। लेकिन हम लोगों ने अंगरेजों को हटा कर पुरानी पद्धति को कायम रख लिया। अर्थात हमने विदेशी राज्य की जगह स्वदेशी कायम किया, स्वराज्य हासिल नहीं किया। यही कारण है कि जिस

तरह यूरोप में एक लडाई के बाद जनता और ज्यादा मुश्किली में पड गयी; वैसी ही हमारी जनता भी मुश्किली में पड रही है। इसीलिये मैं आपसे कहता हूं कि विदेशी राज्य की जगह स्वदेशी राज्य से संतुष्ट न होकर स्वराज्य हासिल करने की क्रान्ति में लग जाइये। याने जैसा कि हमने आपको इस चर्चा में साफ कर दिया है कि केन्द्र-तंत्र के स्थान पर जन-तंत्र स्थापित करने की राजनैतिक क्रान्ति, पूंजीवाद की जगह श्रमवाद स्थापित करने की आर्थिक क्रान्ति और वैषम्यवाद की जगह साम्यवाद स्थापित करने की सामाजिक क्रान्ति में आपको एकाग्रता के साथ लग जाना है।

चालक नहीं, पद्धति बदलनी है

अंग्रेज जिस समय भारत में आये थे उस समय देश में राजतंत्र होते हुए भी जनता अपनी आंतरिक व्यवस्था के लिये स्वतंत्र थी। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सहकारी व्यवस्था बना रखी थी, और आंतरिक शासन आदि कामों के लिये पंचायत पद्धति चलती थी। अंग्रेजों ने इस पद्धति को तोड कर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पूंजीवादी व्यवस्था तथा शासन व्यवस्था के लिये नौकरशाही पद्धति कायम की, ताकि वे आसानी से जनता का शासन तथा शोषण कर सकें। मैं देहाती आदमी हूं इसलिये इसका चित्र एक देहाती तरीके से बताना चाहता हूं। उन्होंने देहाती आबादी की नाक में दो जंजीरें बांधीं। उन जंजीरों को जिले के खूंटे से बांधा, उसको प्रान्तीय राजधानी के खूंटे से जोडा, प्रान्त से दिल्ली और दिल्ली से लंदन तक उस जंजीर को खींच कर ले गये। पूंजीवादी जंजीर की कडी छोटे-बडे व्यापारियों से बनी और नौकरशाही जंजीर की कडी गांव के पटेल से लेकर लंदन के अफसरों तक बनी, ताकि गांववाले अपनी आवश्यकताओं के लिये पहले जैसा आपस का भरोसा न कर सीधी पूंजीवादी जंजीर पकड कर लन्दन तक पहुंच जायं। उसी तरह झगडे आदि के लिये नौकरशाही जंजीर से उपर चले जायं। आप लोगों ने गांधीजी के नेतृत्व में तीस साल तक जो लडाई की उसके नतीजे से आपने

और लंदन के बीच की जंजीर काटी, लेकिन गांववालों के नाक पर हाथ लगा कर देखिये कि वह जंजीर अभी तक बंधी पड़ी है। गांधीजी ने सत्याग्रह द्वारा सत्ता हस्तान्तरित करने का युद्ध छेड़ कर दिल्ली और लंदन के बीच की कड़ी काटने का रास्ता बतलाया। साथ ही साथ चरखे को केन्द्र में रख कर, पूंजीवादी और नौकरशाही खत्म करने और सहकारी तथा पंचायती तरीके से ग्रामस्वावलंबन करने का रास्ता बताया, गांववालों के नाक की जंजीर काटने के लिये। यह थी पद्धति बदलने की क्रान्ति। आपने गांधीजी की बताई पद्धति बदलने की क्रान्ति में दिलचस्पी ली ही नहीं। आप सिर्फ उनके बताये सत्ता हस्तान्तरित करने के युद्ध में शामिल हुए। नतीजा यह है कि जनता उसी जंजीर की कड़ी में अब तक बंधी-पड़ी है, जिसको कि अंग्रेजों ने कायम किया था। पहले वह जंजीर लंदन से खींची जाती थी, अब वह दिल्ली से खींची जाती है। नजदीक से खींची जाने से तकलीफ कुछ अधिक होना स्वाभाविक है। इससे आप परेशान क्यों हैं? अगर आप को तकलीफ दूर करनी है तो आपको पद्धति बदल देनी है। सिर्फ चालक बदल देने से कोई नतीजा नहीं होगा। यही कारण है कि गांधीजी मरते दम तक भारत के गांव को स्वयंपूर्ण बना कर ग्राम राज्य स्थापित करने की बात कहते रहे हैं। जब तक यह नहीं होता तब तक सुख नहीं मिल सकेगा। शोषण के उद्देश्य से अंग्रेजों ने जो यंत्र बनाया है, चाहे आप कांग्रेस के बदले सोशलिस्टों को रख दें या और किसी पार्टी को बैठा दें, उस तंत्र के संचालन में शोषण ही होगा। एक कहावत है कि "ढेंकी पर भी धान कूटती है"। तो जब तक केन्द्रवादी तंत्र रहेगा तब तक, चाहे गांधीजी फिर से जन्म लेकर खुद उसको चलाने लग जाय, उसका काम वही होगा, जो पहले था।

चरखा संघ का कार्यक्रम

प्रश्न १४ —जिन नवीन क्रान्तियों की आप बात करते हैं, क्या चरखा संघ के पास उसका कोई व्यवहारिक कार्यक्रम है? अगर है तो क्या है?

उत्तर:—कार्यक्रम तो स्वयं गांधीजी ही ब्योरेवार बता कर गये हैं। चरखा संघ उसी कार्यक्रम को पूरा करने की चेष्टा में है। सब से पहले चरखा संघ नवीन क्रान्ति के लिये नवजवानों को आव्हान करता है। ऐसे नवजवानों की अपना वर्ग-परिवर्तन कर, किसान और मजदूर बनने की मानसिक तैयारी होनी चाहिये। चरखा संघ उन्हें इस योग्य बनाने की शिक्षा देगा। अपने को उत्पादक श्रेणी में शामिल कर के वे उत्पादकों का नया नेतृत्व उद्बोधित करेंगे। वे गांव गांव में कताई मंडल स्थापित कर के उनपर गांव की सर्वांगीण जिम्मेवारी निभाने की योग्यता पैदा करेंगे, ताके उनमें जिम्मेवारी के आधार पर सही अधिकार का बोध हो सके।

जो लोग संपूर्ण रूप से चरखा संघ में शामिल नहीं हो सकेंगे वे अपने अपने स्थान पर, जहां तक हो सके, अपने जीवन के तर्ज और तरीके उत्पादक श्रेणी के अनुकूल बनाने की कोशिश करें। ऐसे लोग चरखा संघ के स्वावलंबी सदस्य या सहयोगी सेवक बन कर नये आन्दोलन के संपर्क में रह सकते हैं, जिससे उनकी व्यक्तिगत चेष्टा संघ-शक्ति पाकर जनता को प्रभावित कर सके। वर्गहीन समाज की दिशा में मुल्क को ले जाने की क्रान्ति में वे और विभिन्न प्रकार से भी चरखा संघ की मदद कर सकते हैं। वे अपने आसपास में कताई मंडल का संगठन, गांधीजी के क्रान्तिकारी संदेश का प्रचार, नयी क्रान्ति की तात्त्विक मीमांसा, अपना जीवन, विचार वाणी तथा कार्यक्रम द्वारा कर सकते हैं। खुद वर्ग तथा वर्ग-विषमता को न मान कर लोगों में उसका प्रचार कर सकते हैं। इस दिशा में चरखा संघ शोषक वर्ग के लोगों से वर्ग-परिवर्तन की दिशा में एक छोटे से कदम की अपेक्ष्या रखता है, वह यह कि वे कम से कम अपने शारीरिक आराम के लिये घर में नौकर न रखें।

इस तरह जो लोग संपूर्ण संघ में शामिल होकर नयी क्रान्ति के अग्रदूत नहीं बन सकेंगे वे उपरोक्त विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम से देशभर में इसके लिये अनुकूल वातावरण बना सकेंगे। किसी भी लड़ाई के लिये

फौज के मुकाबले में देश का वातावरण कम महत्व का स्थान नहीं रखता है। अतः जो नहीं भी शामिल हो सकेंगे, वे चाहे तो बहुत बडे महत्त्व का काम कर सकेंगे।

जनसत्ता की प्रतिष्ठा

प्रश्न १५ :—आप चरखा संघ की ओर से जो यह सब काम कर रहे हैं तो क्या आप समझते हैं कि राजनीति से अलग रह कर आज की दुनिया में आप प्रगति कर सकते हैं?

उत्तर :—इतनी चर्चा के बाद ऐसा सवाल पूछना अधिक आश्चर्य की बात है। आप के प्रश्न से मुझको ऐसा लगता है कि आपने मेरा प्रारंभिक भाषण और अभी की चर्चा पर गौर से ध्यान नहीं दिया। शुरू से ही मैंने जितनी चर्चा की है अगर उसको आप ध्यान से सोचें तो आपको मालूम होगा कि उसमें सारी राजनीति भरी पडी है। हां, आप की दृष्टि में शायद राजनीति का अर्थ वही है कि जो अधिकार के पीछे विभिन्न पार्टियों द्वारा चल रही है। इसलिये हम राजनीति से अलग हैं कि नहीं इसको समझने के लिये राजनीति के स्वरूप की धारणा होनी चाहिये। मैंने शुरू में कहा है कि राजनीति दो प्रकार की होती है, एक दखलवाली और दूसरी असरवाली। मैंने यह बताया है कि आज की राजनीति असरवाली है। दखलवाली राजनीति तो पुरानी हो गयी है। आज सवाल यह नहीं है कि गद्दी पर कौन बैठता है। सवाल यह है कि गद्दी पर हावी कौन होता है। अगर गद्दीनशीन हावी रहता है तो उसे हम अधिनायक-तंत्र कहते हैं और अगर जनता हावी रहती है तो उसे हम लोकतंत्र कहते हैं। इस दृष्टि से आज आप हमारी सरकार की ओर देखें। आज भारतीय शासन की गद्दी पर राष्ट्रवादी बैठे हैं, लेकिन उस पर पूंजीवादी असर है। चूंकि आज के जमाने में जिसका असर होता है उसी का चलता है, इसलिये आप देश के आर्थिक क्षेत्र में हर स्थान पर पूंजीवादी दृष्टि पायेंगे।

अब प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों ? आपको मैंने कहा था कि भारत के लोगों के दिमाग में अभी सोने के भरोसे अपनी आवश्यकता पूरी करने की बात सूझती है। वे केन्द्रीय उद्योगवाद के कायल हैं। और, जिसके हाथ में केन्द्रीय उद्योग है वे स्वभावतः गद्दी पर हावी हैं। यही कारण है कि हम जनता को सोने का भरोसा छुडा कर श्रम के भरोसे अपना जीवन धारण करने के लिये तैयार करना चाहते हैं। और उसके लिये हम देश-व्यापी कताई मंडलों का संगठन निश्चित रूप से फैलाना चाहते हैं, ताकि गद्दी-पर हावी होने का स्थान पूंजोपतियों से निकल कर श्रमिक के पास चला जाय।

वस्तुतः आज दुनिया में अधिनायक तंत्र का सिलसिला जोरों से बढ़ रहा है। वह इसलिये कि दुनिया से शिव-शक्ति का लोप होकर केवल इन्द्र-शक्ति ही रह गयी है। आज दुनिया में मानव समाज के लिये त्याग और तप करने वाले जितने हैं, सब की दृष्टि इन्द्रत्व की ओर है, शिवत्व की ओर नहीं। यही कारण है कि आज दुनिया में न तो तप करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और न किसी को जनता में जनता बन कर बैठने की दृष्टि है। अगर संसार में जनसत्ता की प्रतिष्ठा कायम रखना है तो हमें शिव-शक्ति का विकास करना ही होगा। उसके लिये जरूरी है कि आप जो तप करें वह इन्द्रासन के लिये नहीं बल्कि स्थायी तपस्वी शिव बनने की दृष्टि से, ताकि आप गणों के बीच रहकर उनमें शोषित या निर्दलित होने से इनकार करने की शक्ति निरंतर रख सकें।

आज जिसे आप राजनीति में भाग लेने की बात करते हैं हमारी दृष्टि से वह राजनीति छोटी चीज है, बल्कि उसका कोई स्थायी आधार ही नहीं है। मैंने अभी जिस राजनीति की बात बताई वही राजनीति चरखा संघ की राजनीति है।

कार्यकर्त्ताओंको क्या मिलेगा ?

प्रश्न १६:—जो नवजवान अपनी जिन्दगी पूरे समय के लिये चरखा संघ को समर्पित कर देंगे उनको क्या मिलेगा ?

उत्तर :—इतनी चर्चा के बाद ऐसा सवाल पूछना आश्चर्य की बात है। उनको वही मिलेगा जो इतिहास में हमेशा क्रान्तिकारियों को मिला करता है। उनको तकलीफ मिलेगी, समाज की उपेक्षा, उपहास, विरोध और शायद दमन भी मिलेगा। वे कभी भूख से मरेंगे और कभी रोग से, हालां कि हिन्दुस्थान जैसे देश में ऐसे लोगों की भुखमरी बहुत कम होती है। जो लोग इस काम में हमारे साथ आना चाहते हैं उनको मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि वे आते समय अपने सर पर अपना कफन बांध कर आवें, क्योंकि अंग्रेजों के हाथ से सत्ता हस्तान्तरित करने के युद्ध में कम से कम एक पक्ष तो योद्धा के साथ था। लेकिन पद्धति के परिवर्तन की क्रान्ति में उसके रूपान्तर के कारण जिसको नुकसान पहुंचेगा वे स्वार्थवश आपका विरोध करेंगे और जिनको फायदा होगा वे भी खिलाफ रहेंगे—अज्ञानता, रूढ़ीवाद और बेहोशी के कारण। इसलिये हो सकता है कि जब आप भूख या बीमारी से मरने लगें तो आपके आस-पास कफन देनेवाला भी कोई न मिले।